हरिः ॐ तत्सत्

श्रीविश्वनाथो विजयतेतराम् ।

( महेश्वर-ग्रन्थमालाका षष्ठ-पुष्प )



# पुनीत-संस्मरण।

लेखक—पूज्यपाद-कनखल-बंगला-पीठाधीश्वर-अनन्त श्रीविभूषित-महामण्डलेश्वर १०८ स्वामी महेश्वरानन्दजी महाराज

मंगलायतनं देवं, युवानमतिसुन्दरम् ।
ध्यायेत् कल्पतरोर्मूले, सुखासीनं सहोमया ॥

प्रकाशक—स्वामी कैवल्यानन्द सरस्वती

श्रीविश्वनाथो विजयतेतराम् ।

(महेश्वर-ग्रन्थमालाका षष्ठ पुष्प)



# पुनीत-संस्मरण

लेखक—

श्रीमत्परमहंस-परिव्राजकाचार्य- दार्शनिक-सार्वभौम-विद्या-वारिधि-न्यायमार्तण्ड-वेदान्तवागीश- श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ-पूज्य पाद १०८ स्वामी महेश्वरानन्दगिरि-महामण्डलेश्वर-महाराज

पुनीतं स्मरणं यस्य, पठनेन मनोगतम् ।
सद्यो हरति पापौघं शान्तिं सौख्यञ्च यच्छति ।।

प्राप्तिस्थान—

(१) सुरतगिरि-बंगला, मुं० कनखल (हरिद्वार)
जि० सहारनपुर, उत्तर-प्रदेश ।

(२) संन्यासाश्रम, विले-पारला-बम्बई ।

(३) बद्रिकाश्रम ( नर्मदातट ) मुं० दरियापुर, पो० चांदोद
जी० बडौदा गुजरातदेश ।

विक्रम-संवत् २०१३ ) ( खिस्ताब्द-१९५८

मूल्य ५० नये पैसे ( मूल लागतसे भी कम )
पोस्ट-व्यय-पृथक् ।

प्रकाशक—
स्वामी कैवल्यानन्द-सरस्वती ।
सुरतगिरि-बंगला-गिरीशानन्दाश्रमके श्रद्धेय-
कोठारीजी महाराज

## स्वात्मा–राम ।

विद्या-सीतावियोग—क्षुभितनिजसुखः शोकमोहाभिपन्नः,
चेतः--सौमित्रिमित्रो भवगहनगतः शास्त्रसुग्रीवसख्यः ।
हत्वाऽऽस्ते दैन्यवालिं मदनजलनिधौ धैर्यसेतुं प्रबध्य,
प्रध्वस्ताबोधरक्षःपतिरधिगतचिज्ज्ञानकिः स्वात्म--रामः ।।

ब्रह्मविद्यारूपिणी–श्रीसीताके वियोगसे जिसका अपना महान्-सुख क्षुभित (प्रचलित) हो गया है, अतएव जो शोक एवं मोह को प्राप्त हो गया है, तथा जो गहन-संसारारण्यमें भ्रमण कर रहा है। जब यह विशुद्ध-चित्तरूपी लक्ष्मणको अपना सहचर बनाता है, तथाशास्त्रविचाररूपी-सुग्रीवसे मित्रता जोड़ता है। और दीनतारूपी वालिका हनन करके एवं कामरूपी-सागरमें धैर्यरूपसेतु को बांध करके जब अज्ञानरूप-राक्षसराज-रावणका हनन करता है, एवं चैतन्य-पूर्ण-बोधरूपी श्रीजानकीको प्राप्त करता है, तभी ही यह स्वात्मा-राम पूर्ण-आनन्दमें अवस्थित होजाता है।

मुद्रक—
हरिश्चन्द्र यमुना प्रेस, हरिद्वार ।
जि० सहारनपुर, उ० प्र०

# विषयानुक्रमणिका ।

ॐ श्री-उमा-महेश्वराभ्यां नमः।

## पूज्यपाद-महामण्डलेश्वर-स्वामी महेश्वरानन्द महाराज की प्रकाशित-अन्य-पुस्तकें—

(१) ऋग्वेद--संहितोपनिषच्छतकं--अध्यात्म--ज्योत्स्नाविवृति—समलंकृतम्। (केवल-संस्कृतम्)

(२) शुक्ल--यजुर्वेदसंहितोपनिषच्छतकं—अध्यात्म-ज्योत्स्नाविवृति—समलंकृतम्। (संस्कृतम्) अस्य समाप्तप्रायं प्रथमं संस्करणम्। द्वितीयमपेक्ष्यते।

(३) अथर्ववेद--संहितोपनिषच्छतकं-अध्यात्म-ज्योत्स्नाविवृति-समलंकृतम्। ( संस्कृतम् ) इमे ग्रन्थाः संस्कृतज्ञेभ्यः पोस्टव्ययप्रेषणेनामूल्यं दीयन्ते।

(४) श्रीमद्भागवतसंहितोपनिषच्छतकं-- अध्यात्मज्योत्स्नाविवृतिसमलंकृतम्-हिन्दी--अनुवादसहितम्--प्रथमखण्डः, पृष्ठ-४५०। मूल्यं २॥) रु० मूललागतसे भी कम। प्राप्तिस्थानं—सुरतगिरि-बंगला, (गिरीशानन्दाश्रम) मुं. पो. कनखल(हरिद्वार) जि. सहारनपुर, उ.प्र.।

(५) गायत्रीमीमांसा–संध्योपासनं, पुरुषसूक्तदेवार्चनम् (हिन्दी–अनुवादसहितम्) अद्यापि समाप्तं प्रथमं संस्करणम्, द्वितीयमपेक्ष्यते ।

(६) श्रीहरगोविन्ददासव्याख्यानमंदिरम् ( हिन्दी––अनुवादसहितम् ) अचिरादेव द्वितीयं संस्करणं मुद्रितं भविष्यति ।

(७) श्रीशंकर–सूक्तिसुधा, समाप्तं प्रथमं संस्करणम्, द्वितीयमपेक्ष्यते ।

(८) गीताप्रवचनसुधा, पृष्ठ ८५० । मूल्य २॥) रु० मूल लागतसे भी कम, पोस्टव्यय––पृथक् ( महामण्डलेश्वरमहाराजका गीतापर हिन्दीमें प्रवचन ) ।

(९) गीताप्रवचनसुधा—हिन्दीका गुर्जर–भाषामें अनुवाद, अनुवादक, श्रीमान् शान्तिलाल-ठाकर-गुजरातीके प्रसिद्ध लेखक-मूल्य २॥)रु० ।

(१०) दक्षिणतीर्थयात्रा—(हिन्दी) महामण्डलेश्वरमहाराजकी दक्षिण-तीर्थयात्राका विशद–विवेचन प्रश्नोत्तर-सदुपदेश–प्रवचन-आदिका वृत्तान्त मूल्य० ॥) मूललागतसे भी कम पृष्ठ १५८ ।

(११) दक्षिणतीर्थयात्रा (गुजराती भाषामें अनुवाद) अनुवादक-श्रीमान् लाभशंकर–पाठक–विद्याधिकारी–कच्छ ।

(१२) सिद्धान्त–द्वयसमीक्षा, तथा गीतासार–श्लोक–व्याख्यान (हिन्दी) आचार्य–शंकर एवं आचार्य रामानुजके सिद्धान्तोंकी समालोचना मूल्य छ आना-मूललागत से भी कम । इनसबका पोस्टव्यय पृथक

प्राप्तिस्थान—संन्यासाश्रम–विले–पारला, बम्बई नं० २४

दुर्लभं भारते जन्म, दुर्लभं शिवपूजनम् ।
दुर्लभं जाह्नवी स्नानं, शिवे भक्तिः सुदुर्लभा ॥
जायते चैकलः प्राणी, म्रियते च तथैकलः ।
एकलः सुकृतं भुङ्क्ते, भुङ्क्ते दुष्कृतमेकलः ॥
नाम--संकीर्तनं यस्य, सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥

# प्राक्कथन–

'पश्यन्ति ते मे रुचिराण्यम्ब ! सन्तः, प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनानि ।
रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि, साकं वाचं स्पृहणीयां वदन्ति ॥
तैर्दर्शनीयावयवैरुदार---विलासहासेक्षितवामसूक्तैः ।
हृतात्मानो हृतप्राणांश्च भक्तिरनिच्छतो मे गतिमण्वीं प्रयुङ्क्ते ॥
(श्रीमद्भा० ३।२५।३५–३६)

श्रीमद्भागवतमें श्रीभगवान् कपिलदेवजी माता देवहूतिसे कहते हैं–हे मा ! वे सन्तजन अरुणनयन एवं मनोहर-मुखारविन्दसे युक्त मेरे परमसुन्दर और वरदायक दिव्य-रूपोंका दर्शन करते रहते हैं, और उनके साथ सप्रेम संभाषण भी करते हैं। दर्शनीय-अङ्ग प्रत्यङ्ग, उदार-हासविलास, मनोहर-चितवन (रसमय–दृष्टि-पात) और सुमधुर-वाणी से युक्त मेरे उन-दिव्य-रूपोंकी अनुपम–माधुरीमें उनका चित्त और इन्द्रियाँ फँस जाती हैं, ऐसी मेरी पावन-भक्ति, न चाहने पर भी उन्हें सूक्ष्म-बुद्धिगम्य-अद्वय-ब्रह्मानन्दानुभवरूप–परमपदकी बलात् प्राप्ति करा देती है।

जैसे दो पटरियोंपर ही रेल-गाडी चलती है, वैसे यह संसाररूपी गाड़ी भी आस्तिकता एवं नास्तिकतारूपी दो पटरियोंपर ही अनादिकाल से चलती आ रही है। अतः संसारमें विभिन्न-संस्कारोंके अनुरूप आस्तिक एवं नास्तिक उत्पन्न होते ही रहते हैं। नास्तिक केवल चर्मचक्षुओंसे इस स्थूल-जगत्को देखता एवं मानता है, और आस्तिक विविध-जपादि-साधनजन्य-अपनी पुनीत-दिव्य–दृष्टिसे सूक्ष्म–दिव्य जगत्को भी देखता एवं मानता है। देवों एवं मानवोंके प्रसिद्ध-वंशकी बात जाने दीजिये, दैत्यवंशको ही लीजिये। एक ही दैत्यवंशमें पिता हिरण्यकशिपु नास्तिक है, ईश्वरीय-सूक्ष्म-दिव्य–शक्तिको वह नहीं मानता, वह तो अपनेको ही जगदीश्वर मानता है-कहता है कि–'मदन्यो जगदीश्वरः कासौ ?। (भा० ७।८।१३) वह मेरेसे अन्य जगदीश्वर कहाँ है ? अर्थात् कहीं भी नहीं है। और पुत्र–प्रह्लाद उस दिव्य-सूक्ष्मतम-भगवत्तत्त्वपर-पिताके

द्वारा प्रबलतम-विरोध उपस्थित करनेपर भी-इतना लट्टु बना रहता है कि-वह उसके लिए विविध-जबरदस्त-कष्टों की भी परवाह नहीं करता। और उसका पुत्र विरोचन देहात्मवादी निरीश्वरवादी नास्तिक होजाता है, और वह ईश्वर-आत्मा-वेद-धर्म आदिका खण्डन करता हुआ चार्वाक मतका प्रचार करता है, और डंकेकी चोटसे कहता है कि-'यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्। भस्मीभूते सति देहे पुनरागमनं कुतः ?॥' अर्थात् जब तक जीवे, तब तक सुखसे-अर्थात् चैनकी मौज-मजेकी बांसरी बजाता हुआ जीवे, मिथ्या-जप तप, व्रत उपवासादिके कष्ट उठानेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है, यदि अपने पास मौजके साधन घृतादि नहीं हैं तो ऋण करके भी उनकी मौज मजा उड़ावे। यदि कोई कहे कि-मरनेके बाद दूसरे जन्ममें किया हुआ ऋण चुकाना पड़ेगा तो ये सब मिथ्या बातें हैं, ईश्वर, धर्माधर्म स्वर्ग, नरक, देव देवी सब अदृष्टपदार्थ कोरी गप्पमात्र है, धर्मध्वजियों ने अपना पेट भरनेके लिए भोले लोगोंको भरमानेके ये साधन खड़े कर रक्खे हैं, इनमें तथ्य कुछ भी नहीं है। यह दृष्ट स्थूल जगत् ही सत्य है, इसका कर्ता संचालक-सूक्ष्म ईश्वर-तत्त्व है ही नहीं। और यह प्रत्यक्ष रूपसे अनुभूयमान देह ही आत्मा है, देह से विलक्षण अदृष्ट-आत्मा नाम की कोई वस्तु अनुभूत है ही नहीं, अतः देहके भस्मीभूत होजाने पर पुनरागमन कहाँसे होगा ?। एक मात्र प्रत्यक्ष ही प्रमाण है, अनु-मानादि अन्य प्रमाण प्रामाणिक नहीं हैं।

और उस विरोचन-पिताका पुत्र बलिराजा बडा आस्तिक-भक्त होजाता है, बाप जैसा बेटा, यह लोकोक्ति इस दैत्यवंशमें मिथ्या सिद्ध होजाती है। वह अपने पितामह-प्रह्लादके समान श्रीभगवान्को अपना सर्वस्व समर्पण कर आत्मनिवेदन-भक्तिकी सिद्धि प्राप्तकर अपराधीन-भगवान्को वह स्वाधीन बना देता है। इस प्रकार इस द्वन्द्वमय-संसारमें परस्पर—विरुद्ध-सुखदुःखादिकी तरह आस्तिकता एवं नास्तिकताका बवंडर उठता ही रहता है। आस्तिक-समाजमें साधक

एवं सिद्ध ऐसे दो कोटिके सज्जन होते हैं। साधक–अलौकिक-दिव्यता का एवं सिद्ध परमार्थ–तत्त्वका भी अनुभव करता रहता है। वेदान्तके अद्वैतसिद्धान्तमें देव–देवीका शक्ति-शक्तिमान्का एवं आत्मा-परमात्माका कुछ भी भेद नहीं माना जाता। विश्वका अभिन्न–निमित्त उपादान-कारण सच्चिदानन्दकन्द––सर्वशक्तिमान्––परमेश्वरकी अभिन्न––दिव्य-शक्तियाँ एवं अनुपम-विभूतियाँ इस जगत्में सर्वत्र दृष्ट एवं अदृष्ट रूपसे फैली हुई हैं। आस्तिक–साधक, इन अदृष्ट–विभूतियोंका भी अपनी न्यूनाधिक–साधनाके अनुरूप स्वल्प या अधिकरूपसे स्वप्नमें एवं जाग्रत्में अनुभव करता रहता है। इस विषयमें अनेक सन्त आचार्य एवं भक्तोंका चरित्र भी प्रमाणरूपसे उपस्थित होता है।

यह संसार शिक्षणालय है, इसमें विविधप्रकारकी शिक्षाएँ मिलती रहती हैं, शिक्षा लेनेवाला चाहिये, शिक्षा देनेवाले बहुत हैं, परन्तु लेनेवाला कोई विरला ही होता है। जगह–जगह पर सब गुरु ही गुरु बने बैठे हैं। हजारोंमेंसे कोई एक विरला ही शिष्य मुश्किलसे मिलेगा। जो सच्चा शिष्य होता है, वही सच्चागुरु हो सकता है। शिष्य वह है—जो सबसे शिक्षा लेकर अपना उद्धार करे, अपनेको समुन्नत बनावे, सच्ची मानवता संपादन करके पश्चात् अपनेमें देवत्व एवं स्वतः सिद्ध महादेवत्व स्थापित करके अपने जीवनको धन्य एवं सार्थक बनावे।

प्रस्तुत––पुनीतसंस्मरणमें पूज्यपाद—महामण्डलेश्वरमहाराजने अनेकविध–अनुभवोंका एवं विविध शिक्षाप्रद घटनाओंका बहुत ही अच्छा वर्णन किया है, साथमें भक्ति–वैराग्य–ज्ञानवर्धक–अनेक–प्रामाणिक श्लोकोंका संयोजन किया है। आस्तिक-साधकोंको इनसे अनेक विध लाभ होंगे, सात्त्विक-मनोरंजन होगा, इसलिये इन सबका यहाँ पुस्तक रूपसे प्रकाशन किया जाता है।

निवेदक—स्वामी कैवल्यानन्द–सरस्वती।

संस्थान–बद्रिकाश्रम, मुं–(ब) दरियापुर, पो० चांदोद
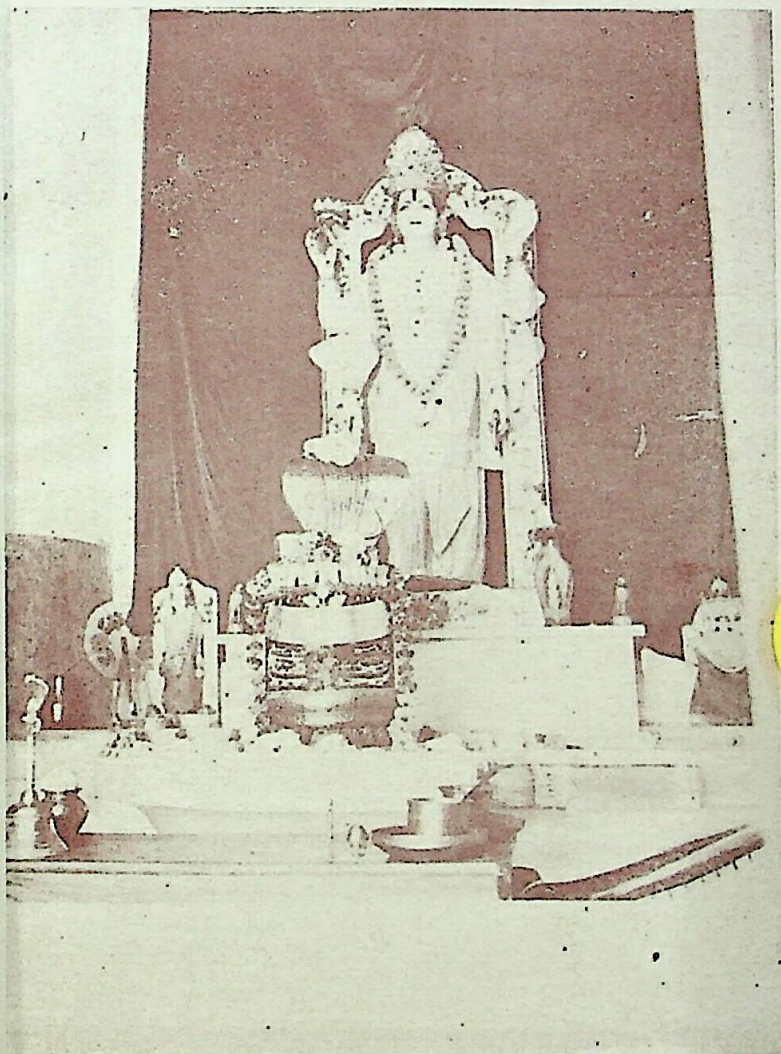
दक्षिणखण्ड–नर्मदातटके श्रीबद्रिनारायण–भगवान्
तथा नारायणेश्वर–केदारनाथ–महादेव ।

हरिः ॐ तत्सत्, वन्दे विश्वेश्वरं विभुम् ।
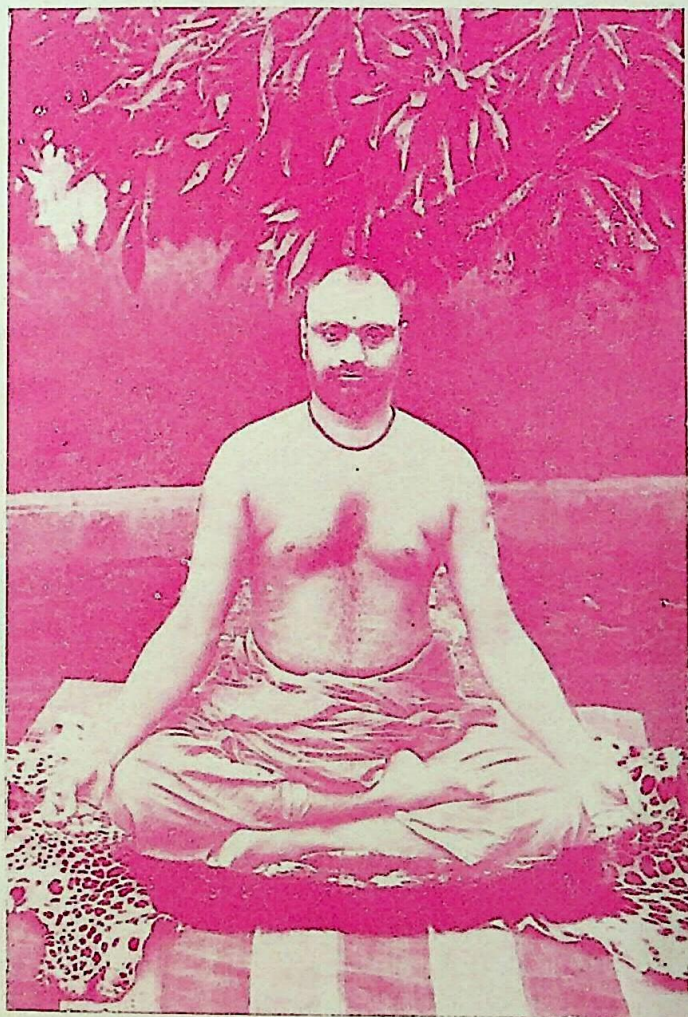
महामण्डलेश्वर--पूज्यपाद--१०८ श्रोत्रिय–ब्रह्मनिष्ठ-
स्वामी महेश्वरानन्दजीमहाराज

हरिः ॐ तत्सत् ।

# पुनीत-संस्मरण ।

[कल्याण-पथमें अग्रसर होने वाले प्रशस्त-साधक जीवनमें अनेक प्रकार की शुभ-संस्मरणीय-प्रेरणाएँ घटनाएँ एवं दैवीचमत्कार प्राप्त होते रहते हैं; उनके संस्मरण मुमुक्षु-साधकोंके लिए बड़े उपयोगी होजाते हैं, इसलिए उन सबका यहाँ पुस्तकरूपसे प्रकाशन किया जाता है ]

## कल्याणमयी-प्रेरणाएँ ।

( यह लेख-परमार्थनिकेतनसे प्रकाशित होनेवाले-परमार्थपत्रके अष्टमवर्षके अनुभवांक नामके विशेषांकमें प्रकाशित हुआ था )

**आनन्दमन्तर्निजमाश्रयन्तं, आशापिशाचीमवमानयन्तम् ।**
**आलोकयन्तं जगदिन्द्रजालं; आपद् कथं मां प्रविशेदसंगम् ?।।***

शुभाशुभ-प्रेरणायें ही शुभाशुभ-जीवनकी सर्जिकाएँ हैं। ये प्रेरणाएँ देखने पर; सुनने पर तथा अनेक प्रकारसे मिलती रहती हैं। मानव जैसा देखता है, जैसा सुनता है, जैसा संग करता है, जैसा बाँचता है, जैसे वातावरण में पलता है, वैसा ही उसके जीवनका निर्माण होता जाता है। इसलिये हमारे अतिधन्य-वेदों ने मानवों के

---

* मैं अपने अन्तरात्माके विमल-पूर्ण-निरतिशय-निर्विषय-निर्विशेष-आनन्दका सतत अनुभव करता रहता हूँ, संसारकी तुच्छ कष्टप्रद कामनारूपी-पिशाचिओंकी निरन्तर अवहेलना करता रहता हूँ; एवं मैं इस नामरूपात्मक-संसारका इन्द्रजालके समान मिथ्याप्रतिभासरूपसे सर्वदा अवलोकन करता रहता हूँ; अतएव इससे मैं सर्वथा असंग होगया हूँ, अर्थात् मैं सच्चिदानन्द-ब्रह्ममें ही सर्वथा अनुरक्त बन गया हूँ, ऐसे मुझमें इस संसारकी काल्पनिकी सारहीन विपत्तियाँ कैसे प्रविष्ट होसकती हैं ? नहीं हो सकतीं ।

प्रशस्त-जीवन निर्माणके लिये ऐसी प्रार्थना करने का आदेश दिया है कि—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः । भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ॥
(ऋ० सं० १।८९।८)

हे यजनीय—देवो ! हम अपने कानों के द्वारा भद्र (कल्याण-कारी) शब्दों का ही श्रवण सदा करते रहें, एवं हम अपने नेत्रों के द्वारा सदा भद्र-दर्शन ही करते रहें, ऐसी हम पर कृपा करते रहो।

'परमार्थ' पत्र के आदरणीय—सम्पादक महोदयका विशेष अनुरोध था कि—आपके जीवनमें किन-किन घटनाओं का प्रभाव पड़ा है, कैसी-कैसी कल्याणमयी प्रेरणाएँ प्राप्त हुई हैं, उन अनुभवों का विशेषरूपसे वर्णन लिखने की कृपा करें। उनके इस प्रेममय अनुरोध के अनुसार जनता-जनार्दनके हितके लिये कुछ घटनाओं को यहाँ लिखने का उपक्रम कर रहा हूँ।

## नाम-भक्ति की प्रेरणा ।

बाल्यावस्थामें जब कि—इस शरीरकी आठ-दस वर्षकी अवस्था होगी, हमारे घरके समीप एक किसान भक्त रहता था। वह बड़ा ही सरल-स्वभावका भोला-भाला सेवाभावी सदाचारी भद्र-मानव था। उसके नेत्र तेजस्वी थे, और उसका मुख सदा प्रसन्नतासे भरा हुआ मालूम होता था। वह अपने घरमें एकाकी ही था; उसने अपना विवाह किया ही नहीं। वह नियमतः प्रातः चार बजे उठ जाता था। समीपके कूपसे स्नान करने के पश्चात् वह मधुर-स्वर से भग-वान् के प्रसिद्ध पावन नामों का तीन घन्टे तक जपानुष्ठान करता था, एवं सायंकाल में भी दो घण्टे तक। वे पावन नाम थे—

श्री अच्युतं केशवं, श्री रामनारायणं,
श्रीकृष्ण दामोदरं श्रीवासुदेवं हरिम्।

श्री श्रीधरं माधवं, श्रीगोपिकावल्लभं,
श्रीजानकीनायकं, श्रीरामचन्द्रं भजे॥

यह पावन नामावलि—आचार्य जगद्गुरु—भगवत्पाद श्री शंकर स्वामी-प्रणीत अच्युताष्टक नामक स्तोत्र के आदिम-श्लोक रूपा थी। यह आदिम श्लोक भारतके कोने-कोने में प्रसिद्ध है। उस भक्त को किसी साधु महात्मा ने इसका उपदेश दिया था, और वह अपने उस गुरु के आदेश से उसमें—'श्री' पदों का बहुत बार संयोजन कर पूर्वोक्तरूपसे उच्चारण करता रहता था।

गुजरात देश में प्रातःकाल भक्तप्रवर श्रीनरसिंह मेहता के—

'अखिल-ब्रह्माण्ड मां एक तू श्री हरि, जूजवे
(अनेक) रूपसे तू ही भासे।'

इत्यादि प्रभातियाँ-जो प्रभात-रागसे लयके साथ गाये जाते हैं, उसी ही प्रभात-राग के उत्तम-मधुर-स्वर से वह भक्त—

"श्री अच्युतं केशवं"

के पावन नामों को लयके साथ गाता था। और उसके मधुर-स्वर संयुक्त-भगवन्नामों की दिव्यतम-शक्तिका बारंबार आघात इस बालक-शरीरके हृदयमें अवर्णनीय-आनन्द-स्फूर्ति का सर्जन करता था। इन्हीं मधुरिम-आघातों ने ही भक्त-प्रवर-प्रह्लाद की भाँति ऐसी प्रेरणा प्रदान की थी कि—

प्रह्लाद-उवाच—

तत्साधु मन्येऽसुरवर्य ! देहिनां, सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात्।
हित्वाऽऽत्मपातं गृहमन्धकूपं, वनं गतो यद्हरिमाश्रयेत॥
(भा० ७।५।५)

प्रह्लाद ने कहा—हे पिता जी ! संसारके प्राणी 'मै' और 'मेरे'

के झूठे आग्रह में पड़कर सदा ही अत्यन्त उद्विग्न बने रहते हैं। ऐसे प्राणियों के लिये मैं यही अच्छा समझता हूँ कि वे अपने अधः पतनके मूल कारण, घास से ढके हुए अँधेरे कूए के समान इस घरको छोड़ कर वन में चले जायँ, और भगवान् श्री हरि की शरण ग्रहण कर उसकी ही आराधना में लग जायँ।

इस प्रकार एक विद्वान् भक्त ब्राह्मणने नाम-भक्तिके महत्त्व के बोधक ये दो श्लोक भी याद करा दिये थे एवं उनका अर्थ भी यथावत् समझा दिया था कि—

भर्जनं भवबीजानां अर्जनं सुखसंपदाम् ।
तर्जनं यमदूतानां राम-रामेति गर्जनम् ॥

अर्थात् राम राम आदि भगवान् के पावन-नामों की गर्जना संसारके वासना रूपी बीजोंका भर्जन कर देती है। सुख एवं दैवी सम्पत्तिके सद्‌गुणों को सम्पादन करा देती है, एवं यमदूतों का तर्जन (भगा) करा देती है। तथा—

मधुरं मधुरेभ्योऽपि पावनेभ्योऽपि पावनं ।
मंगलं मंगलेभ्योऽपि हरेर्नामैव केवलम् ॥

अर्थात्—श्रीहरिका पावन–नाम ही एकमात्र घृत-शर्करादि मधुर पदार्थों से भी अतीव मधुर एवं गङ्गा आदि पावन–तीर्थों से भी अतीव पावन एवं संसार के सभी मांगलिक-यज्ञादिकों से भी अत्यन्त ही मंगलप्रद है।

इस प्रकार की कल्याणमयी-प्रेरणाने ही मुझे बाल्यकाल से ही नाम-जप का प्रेमी बना दिया था और इस साधन के द्वारा ही मुझे समय–समय पर दिव्य-आनन्द-स्फूर्ति का अनुभव होता रहता था। यह साधन इतना सरल-सहज एवं सुगम है कि मानव अपने चलने फिरने आदि सभी कार्यों के साथ भी सम्पादन कर सकता है। अतः—

चहुं युग चहुं श्रुति नाम प्रभाऊ।
कलि-विशेष नहिं आन उपाऊ॥

यह श्रीगोसांई जो की उक्ति यथार्थ एवं सन्तानुभूति से भी प्रामाणिक सिद्ध होती है।

## त्याग-वैराग्य की प्रेरणा।

नाम प्रेम ने ही मुझे साधु-सन्तों का भी प्रेमी बना दिया था। इसलिये मैं जब कभी अनुकूलता मिल जाती थी, तब किसी न किसी साधु-महात्मा के समीप जाकर बैठता था और उनसे कुछ हितकर उपदेश सुनाने की प्रार्थना किया करता था। एक महात्मा-जो ग्राम के बाहर के एकान्त-मन्दिरमें ठहरे थे—उन्होंने मुझे सामने की एक टक्-टक् करती हुई घड़ी का अंगुलीसे इशारा कर ऐसा उपदेश दिया था कि—

घड़ी घड़ी घड़ियाल पुकारे है कही,
बहुत गई है अवधि अलप ही है रही।
सोवै कहा अचेत ! जाग, जप पीवरे,
चलि है आजु कि-काल बटाऊ जीवरे॥
केती तेरी जान केता तेरा जीवना,
जैसा स्वप्न विलास, मृगा-जल पीवना।
ऐसे सुख के काज अकांज कमावना,
बार-बार यमद्वार मार बहु खावना॥

इसका उन्होंने विस्तारसे अर्थ भी समझाया और कहा कि इसको लिख ले और याद कर लेना। जब-जब मैं इसको याद करता था, तब-तब ऐसा मालूम होता था कि अब इस शरीरके जीवनकी अवधि समाप्त होने ही जा रही है, इससे चित्त में बड़ी ही उपरति रहती थी और एकान्तमें रहकर गीता-उपनिषत्-योगवासिष्ठ-आत्मपुराण आदि ग्रन्थों के पढ़नेमें एवं जप ध्यान आदि साधनों में विशेष रुचि बढ़ती जाती थी। हृदय में ऐसा दृढ़तम निश्चय हो गया था कि इस

असार क्षणभंगुर संसारकी जाल में कभी फँसना ही नहीं चाहिये। इसलिये मैंने अपने सिर के शोभा वाले बालों को सफाचट्ट करवा दिया किन्तु यह घरवालों को अच्छा नहीं लगा, और वे चूं-चां करके चुप रह गये।

साथ का एक विद्यार्थी लड़का बड़ा घमण्डी, मज़ाकी स्वभाव का एवं उद्दंड था। वह जब कभी मिले—मुझे देखकर 'सफाचट्ट सफाचट्ट' ऐसा बोलता हुआ मेरी हंसी उड़ाया करता था। दूसरे लड़कों के सामने खिलखिलाकर हँसता हुआ, उन्हें भी इसी हंसी-मजाक में सम्मिलित कर देता था। वह अपने बालों को खूब सजाता और मुख की सीटी द्वारा कुछ गाना गाता हुआ—'कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया' (मेरे समान और कौन है ?) ऐसा भाव प्रदर्शित करता हुआ "गर्वेण तुंगं शिरः" गर्व से शिर को उन्नत बना कर चलता था। उसकी ऐसी हरकतों का मैं कुछ भी जवाब नहीं देता था। क्योंकि-"तांस्तितिक्षस्व भारत !।" (२।१४) गीता का यह वाक्य मुझे चुपचाप सहन करने का आदेश देता था—

"अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति।"

की तरह वह लड़का भी आखिर चुप होगया।

गरमी के समय उस लड़के को एक दम हैजा हो गया, और वह १०, १२ घन्टों में ही समाप्त होगया। प्रातःकाल किसी व्यक्ति ने उसका समाचार ऐसी भाषा में सुनाया कि—वह सफाचट्ट बोलकर हँसी करने वाला लड़का स्वयं सफाचट्ट होगया, अर्थात् मर गया। उसकी मृत्यु के समाचारने मेरे हृदय में हाहाकार मचा दिया, मनीराम अश्रुविन्दुओं के साथ हे नारायण ! हे नारायण ! की दर्द भरी रट लगाने लगा। इस काण्डने त्याग-वैराग्यकी भावना को बहुत ही प्रदीप्त कर दिया। उस समय उस लड़के की समग्र-आकृति हृदय में खड़ी हो जाती थी और श्मशान की चिता में जलता हुआ उसका शरीर दीख पड़ता था।

खिल-खिलाकर हँसने वाले उसके सफेद दाँत एवं सुसज्जित एवं सुवासित काले-काले बाल भी राख की ढेर में परिणत हुए मालूम पड़ते थे। मनुष्यका मिथ्याभिमान एक ही क्षण में मिट्टी में मिलता दिखाई पड़ता था।

इस तन धन की कौन बड़ाई।
देखत नैनों में मिट्टी मिलाई॥

यह महात्मा कबीर का भजन बार-बार स्मृति-पथ में आ जाता था।

इस घटनासे संसारके देह-गेहादि सभी पदार्थों की क्षण-भंगुरता का एवं दुःख-प्रयोजकताका निश्चय हो गया था और श्रीमद्-भागवत का प्रह्लाद जी का यह उद्‌गार बार-बार स्मृति-पथ में आया करता था कि—

रायः कलत्रं पशवः सुतादयो, गृहा महीकुञ्जरकोशभूतयः।
सर्वेऽर्थकामाः क्षणभंगुरायुषः, कुर्वन्ति मर्त्यस्य कियत् प्रियं चलाः॥

(भा० ७।७।३९)

अरे भाई! ये धन, स्त्री, पशु, पुत्र, पुत्री, महल, पृथ्वी, हाथी, खजाना और भांति-भांति की विभूतियाँ और तो क्या, संसारका समस्त ऐश्वर्य तथा भोगोंकी विविध-सामग्रियां भी इस क्षण-भंगुर जीवन वाले मनुष्यको क्या सुख दे सकती हैं? वे स्वयं ही क्षण भंगुर हैं, अर्थात् भोक्ता-प्राणी एवं भोग्यपदार्थ दोनों एक क्षण में ही विनष्ट होने के स्वभाववाले हैं।

## अद्वैतभाव की प्रेरणा।

यह शास्त्रों का सिद्धान्त है कि—वैराग्यकी भावना ही तत्त्व-जिज्ञासा के उदय की प्रयोजिका हो जाती है। तुलसी-रामायण में भी यही कहा है कि—

गुरु बिनु होय कि ज्ञान, ज्ञान कि होय विराग बिनु।

गावहिं वेद पुरान, सुख कि लहहिं हरि भक्ति बिनु ॥

इससे अनेक साधु-महात्माओं के सत्संग द्वारा पारमार्थिक अविनाशी, आनन्द-पूर्ण ब्रह्मात्म-तत्त्वका भी निश्चय होता जाता था। एवं पंचीकरण, विचारमाला, विचार-सागर आदि वेदान्त के ग्रन्थों के स्वाध्याय द्वारा भी हृदय में अद्वैत-भाव का उदय होता जाता था।

यद्यपि 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (छां० उ० ३।१४।१)
'अहं ब्रह्मास्मि' (बृ० उ० १।४।१)
'नेह नानास्ति किञ्चन' (बृ० उ० ४।४।१९)

(यह सब कुछ ब्रह्म ही है, मैं ब्रह्म ही हूँ, इस अद्वय-ब्रह्ममें भिन्न-कुछ भी नहीं है)—

इत्यादि वाक्यों के द्वारा अद्वैत-ब्रह्मका उपदेश खास रूप से शांकर सम्प्रदाय के चतुर्थाश्रमी संन्यासी महात्मा करते हैं—

तथापि 'सर्वतः सारमादद्यात् पुष्पेभ्य इव षड्पदः।'
(भा० ११।८।१०)

अर्थात् जैसे सभी पुष्पों से भ्रमर सार ग्रहण करता है, वैसे ही जिज्ञासु-जनों को भी सभी प्रकारके सन्तों के उपदेश सुनकर सार ग्रहण करना चाहिये। इस भावनाके वशीभूत हुआ मैं एक रोज कुछ सत्संगियों के साथ—रात्रिमें एक जैन-साधु-महात्माके समीप एकान्त में उनका भी कुछ उपदेश सुननेके लिये गया था। रात्रिके समय उनके उपाश्रयमें हिंसाके भयसे दीपक नहीं जलता। अतः अन्धकार में भी उनकी वाणीने अद्वैत-ब्रह्मभावका ही हमारे प्रति प्रकाशन किया। उन्होंने कहा कि—यद्यपि मैं जैन-सम्प्रदायके सभी नियमों का पालन करता हूं; जैन-साधु कहलाता हूँ; तथापि मेरे हृदयमें वेदान्त के अद्वैत-ज्ञानकी विमल-धारा ही प्रवाहित रहती है। अद्वैत-ब्रह्म भाव की निष्ठा को ही मैं कल्याणकारी समझता हूँ, इसके लिये मैं योगवा-

सिष्ठ को श्रद्धा के साथ पढ़ता रहता हूँ। और मैं अद्वैत-ब्रह्मके ध्यान में ही लगा रहता हूँ। इससे मैं हृदयमें राग-द्वेषकी निवृत्ति का एवं आनन्ददायिनी शाश्वत-शान्तिका सतत अनुभव करता रहता हूँ।

इसी प्रकार मैं एक रामानन्दी-वैष्णव साधु महात्मा के—समीप कुछ रोज के लिये जाता रहा। वे भी पक्के वेदान्ती एवं अद्वैत-ब्रह्म भाव के समर्थक थे। जिज्ञासुओं के प्रति खास करके—बड़ी श्रद्धा एवं प्रसन्नता के साथ पञ्चदशी के अनेकों श्लोक बोलकर ब्रह्मस्वरूपका वर्णन करते थे। मुझे उनका कहा हुआ यह श्लोक तभी से याद है—

अस्ति भाति प्रियं नाम, रूपं चेत्यंशपञ्चकम्।
आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं, नाम रूपं ततो जगत्॥

अर्थात्—जगत् के सभी पदार्थों में-अस्ति, भाति, प्रिय, नाम एवं रूप ये पंच अंश विद्यमान रहते हैं। इनमें आदि के तीन अंश ब्रह्म के स्वरूप हैं, और नाम-रूप जगत् के अंश हैं। और ये नाम रूप, परिवर्तनशील एवं काल्पनिक ही होते हैं; और अस्ति, भाति एवं प्रिय ये-तीन-सर्वत्रानुगत-वास्तविक ब्रह्म के अखण्ड-एकरस अपृथक्-अंश हैं। उस वैष्णव महात्माने ही मुझे पञ्चदशी ग्रन्थ की भूरि-भूरि प्रशंसा करके उसे पढ़ने एवं मनन करने की शुभ प्रेरणा दी थी।

इस प्रकार मुझे बाल्यकालमें ही विभिन्न-द्वैत-वादी संप्रदाय के साधु-महात्माओं के द्वारा भी अद्वैत-ब्रह्मभावकी कल्याणमयी शुभ-प्रेरणा प्राप्त हुई थी। इससे मेरी आचार्य-जगद्गुरु श्रीशंकर-स्वामी के केवलाद्वैत-सिद्धान्त पर विशेष श्रद्धा एवं दृढ़ भावना बढ़ गयी। अतः भगवत्पाद-आचार्य प्रणीत 'भज गोविन्दं' आदि अनेक स्तोत्रों को प्रायः कण्ठस्थ कर लिया था और विवेक-चूड़ामणि, शत-श्लोकी आदि अनेक ग्रन्थों का भी स्वाध्याय कर लिया।

## निष्कामता एवं निर्विकल्पता की प्रेरणा।

अब मैं घरसे चुपचाप निकल गया तथा विरक्त-ब्रह्मचारी का

वेष धारण कर लिया। परिव्राजक महात्माओं के साथ इधर-उधर घूमता हुआ, उनसे कुछ संस्कृत-ग्रन्थों का भी स्वाध्याय करता हुआ ऋषिकेश पहुँच गया। उस समय के ऋषिकेशका दृश्य बड़ा ही सात्त्विक, शान्त एवं बहिर्मुख-लोगों के कोलाहलसे प्रायः शून्य था। दुकानों एवं मकानों की इतनी भरमार नहीं थी। वहां मैंने एक छोटीसी फूस की पर्णकुटी-जिसमें बैठ सकते हैं—सो सकते हैं, खड़े नहीं हो सकते-ऐसी बिना खर्च की बना ली थी। प्रातः गंगास्नान करके गंगा किनारे ही बैठा रहता था। ब्रह्म-ध्यानके बाद मूल-मूल कई उपनिषदों का, गीताके कुछ अध्यायों का एवं समग्र विवेक-चूड़ामणि का पाठ किया करता था। चित्त में बड़ी शान्ति एवं एकाग्रता थी। अन्न-क्षेत्रों से भिक्षा लाकर गंगा-किनारे के एक पवित्र पाषाण पर उसे रखकर प्रेम से पा लेता था। भिक्षा के बाद कुछ आराम करने के पश्चात् मैं खूब श्रद्धा एवं एकाग्रता के साथ संस्कृत मधुसूदनी-गीता का स्वाध्याय एवं मनन करता था।

एकाकी निःस्पृहः शान्तः, पाणिपात्रो दिगम्बरः।
कदा शम्भो! भविष्यामि कर्मनिर्मूलने क्षमः॥

हे शम्भो! इष्टदेव! भगवन्! एकाकी-स्पृहारहित-शान्त, हाथ ही पात्रवाला एवं दिगम्बर होकर-ब्रह्म-विद्या द्वारा कब मैं अविद्या मूलक-कर्मबन्धनों के निर्मूलन करने में समर्थ होऊंगा? तेरी महती कृपा द्वारा ही ऐसा हो सकता है।

ऐसी मेरी प्रार्थना एवं भावना यहां कुछ-कुछ सफल होती हुई जान पड़ती थी और यह विष्णु-पादोदकी-शंकरशिरोविहारिणी-भगवती जाह्नवी की स्वच्छ-पवित्र एवं श्रद्धेय-धारा एवं देवतात्मा स्वरूप-हिमालय की मनोहारी-भव्य-पर्वत-माला,—मुझे ऐसा स्पष्ट-भास हो जाता था कि—उपनिषत् के इन अतिधन्य-मन्त्रों के द्वारा निष्कामता एवं निर्विकल्पता की प्रशस्त शिक्षा दे रही हैं। ऐसा मालूम होता था कि पवन के द्वारा—

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥
(बृ० उ० ४।४।७। कठ उ० ६।१४)

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्॥
(क० उ० २।६।१०)

जब इसके हृदयमें अवस्थित-समस्त कामनाएँ-छूट जाती हैं, अर्थात् हृदय जब निष्काम हो जाता है, तब यह मरणधर्मा मानव अमृतस्वरूप हो जाता है, अर्थात् मृत्युके भयसे मुक्त होकर-अमर-स्वरूप चिदात्माके महान् आनन्दको प्राप्त कर लेता है, एवं यहां जीवित कालमें ही ब्रह्म-भावका अपरोक्ष अनुभव करता है।

जब मन के साथ चक्षुरादि-पञ्चेन्द्रियों के ज्ञान स्थिर हो जाते हैं, एवं बुद्धि भी चेष्टारहित हो जाती है, अर्थात्—इन्द्रियों के द्वारा किसी भी दृश्य-पदार्थ का ग्रहण नहीं होता। मन एवं बुद्धि निर्विकल्प हो जाती है; अर्थात् ऐसी संकल्प-विकल्प रहित अद्वैत-ब्रह्मभावमयी दशा का नाम ही परम गति है—ऐसा विद्वान् कहते हैं।

—ये मन्त्र मुझे स्पष्ट सुनाई पड़ रहे थे और मुझे निष्काम एवं निर्विकल्प होने की भव्य-प्रेरणा स्पष्टतः दे रहे थे। उस समय मुझे अवर्णनीय एवं अकथनीय-विमल-एकरस-शाश्वत आनन्दकी स्पष्टतः अनुभूति होती थी; और ऐसा भास होता था—कि वह आनन्द मेरे वक्षःस्थल की हड्डियों को तोड़ कर चारों तरफ सतत प्रवाहित हो रहा है और मैं—उस में तैर रहा हूँ—उसमें तन्मय होता जा रहा हूं। अतः उपनिषदों का यह मन्त्र यथार्थ ही कहता है कि—

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो, निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं तदा गिरा, स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते॥

अर्थात् समाधि के द्वारा यानी चित्तकी एकतान एवं निर्विकल्प दशा द्वारा जिसके चित्त के व्यग्रता आदि मल विनष्ट होगये हैं, ऐसे नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-अद्वयानन्द-पूर्ण आत्मा में अवस्थित-चित्त द्वारा जिस-निर्विषय-निर्मल-शाश्वत-सुखका अनुभव होता रहता है-उसका वाणीसे वर्णन नहीं किया जाता, स्वयं अन्तःकरण ही उसका अनुभव कर सकता है।

## ब्रह्मनिष्ठता की प्रेरणा।

हृषिकेशसे हरिद्वार-कनखल-सुरतगिरि-बंगला में आकर अब मैं ब्रह्मलीन-पूज्यपाद-परमश्रद्धेय श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ-महामण्डलेश्वर स्वनामधन्य स्वामी श्रीजयेन्द्रपुरी जी महाराजके शरणापन्न होगया। उनकी महती कृपा से वहां मुझे गंगाके पावन तट पर संन्यास की विधिवत् दीक्षा प्राप्त हुई। पूज्य-महाराज जी की शुभ प्रेरणा से संस्कृत शास्त्रों का विशेष अभ्यास करने के लिये मैं काशी ललिताघाट राजराजेश्वरी के मन्दिरमें रहने लगा। एवं समय-समय पर पूज्य श्री महाराज जी के पुनीत श्रीमुख द्वारा भी बृहदारण्यक-शांकर भाष्य, शारीरक शांकर भाष्य, भामती-कल्पतरु-परिमल, सिद्धान्तलेश, अद्वैत सिद्धि, संक्षेप-शारीरक आदि अनेक अद्वैत वेदान्त ग्रन्थों के स्वाध्याय का अलभ्य लाभ मिला। पूज्य महाराज जी के भव्य-श्रद्धेय-दर्शन मात्र से ही मुझे ब्रह्मनिष्ठता का अपरोक्ष दर्शन हो जाता था। ब्रह्मचर्य-निःस्पृहता आदि साधनों के द्वारा ब्रह्मनिष्ठता सम्पादन करना ही मानव जीवन का नितान्त स्पृहणीय चरम लक्ष्य है। ऐसी मुझे स्पष्टतः उनके पुनीत-दर्शन मात्रसे ही शुभ प्रेरणा प्राप्त होजाती थी। अतः हमारे शास्त्रों में कहा है कि—

दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभं तत्त्वदर्शनम्।
दुर्लभा सहजावस्था सदगुरोः करुणां विना॥

अर्थात्—सद्गुरु की करुणा प्राप्त किये विना विषयासक्तिका

त्याग दुर्लभ है। तत्त्व का दर्शन भी दुर्लभ है, एवं सहज-समाधिकी पावन दशा भी दुर्लभ है। परन्तु सद्गुरुकी कृपा लाभ द्वारा ये सब दुर्लभ भी अनायासतः सुलभ हो जाते हैं। इसलिये 'न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं' अर्थात् गुरु से बढ़कर मुमुक्षुओं का हितकर और कोई नहीं और कोई नहीं, यह सदुक्ति यथार्थ ही है।

## निःस्पृहता की प्रेरणा।

समय-समय पर मैं काशीसे हरिद्वार भी आता जाता था। वहाँ कनखल-सुरतगिरि बंगला के अध्यक्ष ब्रह्मलीन पूज्यपाद-श्रोत्रिय ब्रह्म-निष्ठ प्रातः स्मरणीय महन्त स्वामी श्री गिरिशानन्द जी महाराज जी की पावन-कृपामयी छत्र-छाया में बहुत समय तक अनेक बार रहने का सौभाग्य प्राप्त होता रहता था। पूज्य श्री महन्त जी महाराज उच्चकोटि के समदर्शी महात्मा एवं निःस्पृह महापुरुष थे। इतने बड़े स्थानके-जिसमें सैकड़ों की तादाद में साधु-महात्मा रहते थे-संचालक होने पर भी वे पूर्णरूपसे निःस्पृह एवं असंग भावापन्न ही बने रहते थे। उनकी निःस्पृहताकी अनेकों घटनाएँ मेरे प्रत्यक्ष देखने में आयीं।

एक समय कलकत्ताका एक बड़ा मारवाड़ी सेठ आया। श्री महन्त जी महाराजके समीप आकर नम्रताके साथ कहने लगा "कहिये महाराज! आप के कोठारमें जो चीजें घी, शक्कर आदि न हों, वे बतलाइये, मैं ला दूँ।" श्री महन्त जी महाराज ने निःस्पृहताके साथ समक्ष बहती हुई भगवती श्रीगंगा जी की तरफ हाथका इशारा कर यही उत्तर दिया कि "भगवती गंगा माता की कृपा से हमारे कोठारमें थोड़ा बहुत सब कुछ है।"

बीकानेरका एक धनवान् सेठ आया और एक वृद्ध महात्मा जी की प्रेरणा से श्रीमहन्तजी महाराजके समीप आकर कहने लगा कि—"महाराज! आपके आश्रम के इन महादेवके एवं भाष्यकारके दोनों मन्दिरों में मैं आरस (संगमर्मरकी तख्तियाँ) लगाना चाहता हूँ—जिससे मन्दिरों की शोभा बढ़ जायगी। इसके लिये मुझे अनुज्ञा

दीजिये।" पूज्य महन्त जी महाराजने कहा कि इनके लगाने से चोर लोग चमकेंगे और रात्रिमें चक्कर लगाने लगेंगे, आरती-प्रार्थना के समय खड़े रहने वाले साधु-महात्माओं के पैर ठण्डे बरफ जैसे हो जायेंगे। अतः इनके लगाने से लाभ कुछ नहीं; हानि ही हानि है, सात्विकता के बदले राजसी शोभा बढ़ेगी, इसलिये मैं आरस लगाने की अनुमति नहीं देता" ऐसा निःस्पृह उत्तर सुनकर वह सेठ चुप होगया।

लखनऊसे पंजाबी-बाबाके नामसे विख्यात एक अच्छे महात्मा वहाँ पधारे और श्री महन्त जी महाराज के सामने चार हजार के नोटों का बण्डल रखकर कहने लगे कि "महाराज! इनके द्वारा आप अपने इस आश्रम में महात्माओं के निवास के लिये दो-तीन कमरें बनवा दीजिये।" श्रीमहन्तजी महाराज ने तुरन्त ही ऐसा निःस्पृह उत्तर दिया कि "महात्माओं के निवास के लिये यहाँ पर्याप्त कुटियाएँ हैं। अधिक बनाने की आवश्यकता नहीं है" ऐसा कहकर वह नोटों का बण्डल तुरन्त ही उन महात्मा जी के समीप फेंक दिया। वे कई बार नम्रताके साथ आग्रह करते रहे परन्तु महन्त जी महाराज ने उसको बिल्कुल स्वीकार किया ही नहीं।

आखिरके जीवनमे ५-७ वर्ष प्रथम ही स्थानकी अध्यक्षता की उपाधि भी छोड़कर पुष्करराजके एकान्त-स्थानमें मस्तीके साथ ब्रह्म-चिन्तन करते रहे। शरीरकी समाप्तिका समय भी हम लोगों को श्री महन्त जी महाराज ने पहलेसे ही बतला दिया था और कहा कि—"मैं इस शरीरको नर्मदाके पावन तटपर छोड़ना चाहता हूँ। इसलिये मुझे भरुचके-पूज्य महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीजयेन्द्रपुरी जी महाराजकी समाधि-स्थान अशोक-आश्रम में ले चलो' ऐसा हम लोगों को आदेश दिया और वहाँ जाकर निर्दिष्ट समय पर ब्राह्ममुहूर्त में 'ॐ' मन्त्र की पवित्र ध्वनि सुनाकर प्राणत्याग कर वे ब्रह्म में विलीन हो गये।

इस प्रकार सारग्राही-गणज्ञ-साधक जीवनमें अनेक प्रकार की

कल्याणमयी-शुभप्रेरणाएँ प्राप्त होती ही रहती हैं। और विवेक-हीन-दोषग्राही संसारासक्त-मानवके जीवनमें अशुभ-प्रेरणाएँ मिलती हैं। जैसी शुभ या अशुभ प्रेरणाएँ प्राप्त होती हैं, उनके अनुरूप ही हृदय में शुभाशुभ भावनाओं का प्रवाह प्रवाहित होता रहता है। यह सिद्धान्त है कि—

'जाकी जैसी भावना, तैसो ही फल होय।'

अतः किसी विद्वान् महापुरुषने यह ठीक ही कहा है कि—

सदा सुखप्रदायिनी विभाति शुद्धभावना,
सदैव दुःखदायिनी भवेच्च दुष्टभावना।
न निष्फला भवेद्यतः कदापि कापि भावना,
यथा मतिस्तथा गतिर्वदन्ति वेदवादिनः॥

अर्थात् शुद्ध-भावना सदा सुखप्रदायिनी होकर विभासित होती है, और दुष्ट भावना सदा दुःखदायिनी ही हुआ करती है। क्योंकि-यह नियम है कि कोई भी भावना, शुभ या अशुभ, कभी भी निष्फल नहीं हो सकती। अतः जैसी शुभ या अशुभ भावना वाली मति होती है, वैसी ही अच्छी या बुरी गति प्राप्त होती है—ऐसा वेदवादी विद्वान् कहते हैं।

अतः जैसी भावना होगी, वैसा आचरण होगा; और जैसा आचरण होगा, वैसा वह सर्जन करेगा। इस प्रकार भावना, आचरण एवं सर्जन का क्रम सामानाधिकरण्य है, अर्थात् क्रमशः एकाधिकरणमें विकसित होता है। अतः शुभभावनासे शुभाचरण होगा, उससे वह अपने लिये स्वर्गीय-आनन्दों का सर्जन करेगा एवं अशुभभावनासे अशुभाचरण होगा और उससे वह अपने लिये नारकीय-दुःखोंका सर्जन करेगा। अतः यह मानव 'स्वतन्त्र कर्ता' है। अपने लिये चाहे तो वह स्वर्ग या नरक दोनोंमें से एक सम्पादन करने में स्वतन्त्र माना गया है।

## घटनाओं का प्रभाव ।

मानव जीवनमें अनेक-प्रकारकी घटनाएँ घट जाती हैं, जो हृदयमें विविध-प्रकारके प्रभावोंकी छापें डाल देती हैं। यह समग्र-जगत् ही घटनामय है, एवं परिवर्तनशील है, 'अतिशयेन गच्छतीति जगत्' इस व्युत्पत्तिके अनुसार-जो अनेक-इष्टानिष्ट दशाओंके मध्यमें से सतत प्रवाहित होता रहता हो, यह-गतिशील पदार्थ ही जगत् है। अतः इसके नामोंकी रूपोंकी एवं भावोंकी स्थिरता कहीं भी देखनेमें नहीं आती। एक-चिन्मात्र-तत्त्व ही स्थिर-अखण्ड-एकरसरूपसे तत्त्वज्ञोंको प्रतीत होता है। इसलिये योगभाष्यमें कहा है कि—'सर्वे भावाः क्षण-परिणामिनः, ऋते चितिशक्तेः।' अर्थात् एक चेतनशक्ति को छोड़कर सभी मायिक पदार्थ, क्षण-क्षणमें बदलते रहते हैं।

अत एव किसी व्यक्तिके विषयमें कुछ समयके लिए अच्छाभाव दीखने पर भी अमुक-प्रकारकी घटनासे उसके विषयमें भावका परिवर्तन होजाना स्वाभाविक होजाता है। जो जन, जैसा कहता है, एवं जैसा मानता है, वैसा यदि अपने व्यवहारमें रखता नहीं है, तो उसका कहना निष्फल एवं प्रभावहीन होजाता है। अभिमान, द्वेषादि-आसुर भावोंके वशीभूत होकर-जो अपनी विमल एवं प्रामाणिक मान्यतासे विमुख होजाता है, तो उसकी मान्यता श्रद्धेय नहीं होसकती। जो जैसा कहता है एवं मानता है, वैसा ही वह अपने जीवनके प्रत्येक व्यवहार को बना डालता है, तो वह श्रद्धेय, माननीय एवं वन्दनीय होसकता है।

करनी बिनु कथनी कथे, अज्ञानी दिन रात।
कूकर ज्यों भूकत फिरत, सुनी सुनाई बात॥
कहनी मिसरी खाण्ड है, रहनी ताता लोह।
कहनी कहे रहनी रखे, ऐसा विरला कोह (ई)॥

## विरक्त–महात्माओंका साथ।

जब मैं शुक्ल-वस्त्रोंका परिधान करनेवाला तरुण ब्रह्मचारी था। तब मैं सच्चे विद्वान्-निष्ठावान्-गुरुओंकी खोजमें इधर-उधर घूमता रहता था। उस समय गंगा-यमुनाके मध्य-प्रदेशमें एक-दो विरक्त-वेदान्ती परिव्राजक-महात्माओंके साथ भ्रमण कर रहा था। पैदल-भ्रमण करनेमें अनेक-प्रकारके लोगोंके दर्शन एवं विविध-प्रकारके कष्टोंका भी अनुभव होता है। तितिक्षाकी धैर्यकी एवं असंगभावकी परीक्षा देनी पड़ती है। अत एव भगवत्पाद-आचार्य स्वामीने तितिक्षाका ऐसा लक्षण बतलाया है कि—

सहनं सर्वदुःखानामप्रतीकार-पूर्वकम् ।
चिन्ताविषादराहित्यं सा तितिक्षा निगद्यते ।।

(विवेक–चूडामणि)

अर्थात् मनसे वाणीसे एवं शरीरसे भी प्रतिकार किये विना ही आये हुए-समस्त-दुःखोंको चुपचाप सहन करना, इससे धैर्यकी इयत्ताका पता चल जाता है। इसमें भी ये कष्ट कब एवं किन साधनोंसे दूर होंगे ? ऐसी चिन्ता नहीं होने देना, तथा अब तो ये कष्ट नहीं सहे जाते, ऐसा विषाद भी नहीं करना, यह तितिक्षाका स्वरूप है। यह तभी ही सिद्ध हो सकता है–जब कि–हृदय में पूर्णानन्दमय–अद्वय ब्रह्मका अभेद रूपसे अन्तर्बहिः सर्वत्र अनुसंधान बना रहता हो, एवं ब्रह्मानन्दानुभूति अनवरत होती रहती हो। या अनन्य-प्रेमसे अपने आराध्य-इष्टदेवकी जप-ध्यानादिके द्वारा ध्रुवास्मृति बनी रहती हो। एवं भगवदिच्छामें प्रसन्न रहनेकी दृढतम भावना हो। तात्पर्य यह है कि–इन प्रतिकूल-आराम-विरोधी कष्टोंको प्रसन्नतापूर्वक शान्तिसे सहन करना तितिक्षा कहलाती है। किसी भी प्रतिकूल–परिस्थितिकी उपस्थिति होने पर भी अपनी शान्तिको एवं एकाग्रताको भंग नहीं होने देना, तितिक्षाका लक्ष्य है।

वे दो विरक्त-महात्मा वेदान्तकी बड़ी बड़ी ऊचीं ऊचीं बातें सुनाते थे। कहते थे कि-'अहं ब्रह्मास्मि' 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' मैं ब्रह्म हूँ, यह विश्व सब कुछ ब्रह्म ही है। ब्रह्मसे भिन्न कुछ भी नहीं है, सर्वं ब्रह्ममयं रे! रे! सर्वं ब्रह्मसयम्।' 'दीनताको त्याग नर, अपनो स्वरूप देख, तू तो शुद्ध ब्रह्म अज, दृश्य को प्रकाशी है।' 'जो सुख नित्य-प्रकाश विभु, नामरूप आधार। मति न लखे जिंहि मति लखे, सो मैं शुद्ध अपार॥-की रट लगाते रहते थे। जिनके सुननेमें मुझे बड़ी रुचि, हर्षोद्रेक एवं तल्लीनता भी हो जाती थी।

## विरक्तताकी ओटमें सरक्तता।

एक रोज-घूमते घूमते हम लोग एक छोटेसे ग्राममें गये। वहां एक साधु-महात्माका छोटा-सा स्थान था। ग्रामके लोगोंने कहा-महाराज! आप लोग वहाँ जाइये, आपको वहाँ निवास-भोजनादिकी सभी प्रकारकी सुविधा मिलेगी। स्थानका व्यवस्थापक-महात्मा बड़ा अच्छा नम्र, एवं सेवाभावी है। उनके निर्देशके अनुसार हम वहाँ पहुंचे। उस समय वहाँका अध्यक्ष-महात्मा कुछ वृद्ध-स्त्रियोंके साथ कच्चा अन्न साफ कर रहा था। हम लोग समीपके कमरेके दालानमें जाकर एक तखत पर बैठ गये। ५-१० मिनट होने पर भी वह स्थानका महात्मा हमारे समीप स्वागतके लिए नहीं आया। तब हमारे उस एक वृद्ध विरक्त महात्माका मिजाज गरम होगया। वह 'निःस्पृहस्य तृणं जगत्' का मिथ्याभाव रखकर अभिमान वश तमककर बोल उठा एवं खड़ा होगया कि-चलो, चलो, यहां से। मेरे मनमें यह विचार आया कि-'इतनी जल्दी क्यों की जाती है? वह महात्मा आपके समीप अवश्य आयगा, आपका स्वागत करेगा, धैर्य एवं शान्ति रक्खो।' परन्तु मैं नया नया तरुण-ब्रह्मचारी साधु होनेके कारण वैसा कुछ बोल नहीं सका। जब वे वहाँ से जानेके लिये तैयार हो गये, तब मुझे भी सहचर होनेके नाते उनका अनुसरण करना पड़ा।

उस स्थानीय-महात्माने देखा—ये अतिथि महात्मा यहाँ से जा रहे हैं, तो वह एकदम अपना कार्य छोड़कर फौरन् हाथ जोड़कर सामने आकर खड़ा होगया। नम्रता एवं विनय प्रदर्शित करता हुआ कहने लगा—भगवन् ! प्रकृत कार्य समाप्त कर मैं अभी ही आपके समीप स्वागतके लिये आ ही रहा था। आपने इतनी उतावली क्यों की ? आराम से बिराजिये, आपका ही स्थान है, सभी प्रकारकी उचित व्यवस्था हो जायगी। इसप्रकार वह महात्मा प्रेम एवं सद्भावके साथ बड़े ही अच्छे मधुर-शब्दोंमें अपना शिष्टाचार प्रदर्शित कर रहा था। परन्तु हमारा वह विरक्त-वृद्ध महात्मा अपने मिथ्यात्यागके अभिमान वश उस स्थानीय-महात्माके प्रेम एवं विनयकी अवहेलना करता हुआ तिरस्कारके कटुवचनोंका ही अनाप-सनाप सभ्यताविरुद्ध प्रयोग करने लगा। तो भी वह महात्मा अपनी यत्किञ्चित्-त्रूटिके लिए क्षमा याचना करता हुआ, शब्दोंके द्वारा अपने मधुर-भावोंको ही अभिव्यक्त करता रहा। और हमारा यह क्रुद्ध विरक्त-महात्मा विवेकहीन-शब्दोंका प्रयोग करता हुआ आगे बढ़ गया। मुझे भी 'अनिच्छन्नपि कौन्तेय ! बलादिव नियोजितः।' (गी० ३।३६) की तरह उसका अनुसरण करना पड़ा। परन्तु मेरे हृदयमें बड़ा भारी धक्का लगा। मेरा मन सोचने लगा कि–उस स्थानीय-महात्माका कितना अच्छा–सद्व्यवहार था। उससे हमारे इस विरक्त-महात्माके हृदयमें शान्ति एवं संतोष होना चाहिये था। आगन्तुक द्वेष एवं क्रोधका शमन होना चाहिए था, सद्गुण त्याग एवं दोष स्वीकार का भान होना चाहिये था। परन्तु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। आगे बढ़ता हुआ भी वह महात्मा; द्वेष एवं क्रोध की ही ज्वालाओंको अपनी मुखाकृति द्वारा नेत्र द्वारा एवं शब्दों द्वारा प्रकट करता रहा। उस समय- 'क्या वेदान्तका व्यावहारिक यह ज्ञान है कि–अज्ञान है ? क्या यह स्तुत्य-ब्रह्मभाव है कि–तुच्छ-देहभाव है ? त्याग-वैराग्यका क्या यही फल है ? त्याग एवं वैराग्यका वास्तविक स्वरूप क्या है ? एक-दो कपड़े रखकर एवं लंगोटी लगाकर इधर उधर घूमनेमें ही क्या त्यागकी इतिश्री होजाती है ?

वेदान्तके गप्पगोले लगाने मात्रमे ही क्या पराशान्तिका एवं जीवन्मुक्ति का लाभ मिल सकता है ?' इत्यादि अनेकों बातें एवं प्रश्न मेरे हृदय में उपस्थित हो गये।

उस समय मैं सहचारी होनेके नाते इस विरक्त-महात्माके प्रति नम्रतासे कहने लगा कि—भगवन् ! आपको शान्ति रखनी चाहिये थी। 'ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।' ( गी० ४।३९ ) ज्ञान को प्राप्त करके वह शीघ्र ही पराशान्तिको प्राप्त कर लेता है, अतः ज्ञान का फल शान्ति ही है। अतः आपको द्वेषके बदले आत्म-प्रेमभाव प्रदर्शित करना चाहिये था। 'ज्ञानस्याभरणं क्षमा' ज्ञानका आभूषण क्षमा है, यह तो आप जानते एवं मानते हैं ही।' इत्यादि मैं कहने ही लगा था कि—वह अपनेको विरक्त माननेवाला साधु तमककर मेरे प्रति भी तिरस्कार के साथ कहने लगा कि—'चल, बे ! तू आज-कलका नया-छोकरा-साधु क्या जानता है ? हमें ज्ञान सीखाता है, हम सब कुछ जानता है, तेरेसे हमें कुछ भी सीखनेकी एवं सुननेकी जरूरत नहीं।' उसकी इतनी बात सुनकर मैं नितान्त चुप होगया, सन्नाटेमें आगया। इसका साथ छोड़कर अकेला ही अन्यत्र चल पड़ा।

## सच्चा-वीतराग-महात्मा कौन है ?।

इस घटनासे मेरा हृदय बड़ा ही प्रभावित होगया। विचार करने लगा कि—जितने ही सफेद-रंगसे दीखाई पड़ने वाले—तरल पदार्थ हैं, वे सभी ही मधुर स्वादिष्ट—दूधरूप नहीं होते, उसप्रकार जितने भी वेष-धारी साधु हैं, वे सभी ही वस्तुतः साधु महात्मा नहीं होते। असलमें वह स्थानवाला महात्मा ही सच्चा विरक्त—महात्मा था। जिसके भीतर प्रेम सद्भाव एवं सेवाभाव ही था। जो सर्वात्मा—भगवान्का अनुरागी होता है। वही तुच्छ—विषयासक्तिसे एवं अभिमानादि-मिथ्यादुर्गुणोंसे विरक्त हो सकता है। जो वह द्वेष एवं क्रोधके प्रति भी प्रेम विनय एवं सद्भाव ही प्रदर्शित करता रहा। कटु--शब्दोंके प्रति भी मधुरशब्द ही बोलता रहा, उद्दण्डताके प्रति नम्रता बतलाता रहा। अत एव महर्षि-

योंने कहा है कि—

न विरक्ता धनैस्त्यक्ताः, न विरक्ता दिगम्बराः।
नोपवासपराश्चापि, नापि ह्येकान्तवासिनः॥
विश्वरूपे हरौ विष्णौ, प्रेमसद्भावसेवया।
ये स्यु र्विशेषतो रक्ताः, ते विरक्ता मता मम॥

अर्थात् धनोंसे जो परित्यक्त हुए हैं, यानी जिन्हें धन कभी स्वप्नमें भी मिला ही नहीं है, अतः वे धनको छोड़ेंगे क्या? ऐसे धनविहीन भी विरक्त नहीं होसकते, एवं जो दिगम्बर-नग्न रहते हैं, वे भी विरक्त नहीं हैं। तथा जो उपवास करते रहते हैं, एवं एकान्तमें पड़े रहते हैं, वेभी विरक्त नहीं माने जाते। किन्तु जो विश्वरूप श्रीहरि व्यापक-विष्णुमें प्रेम, सद्भाव एवं सेवा द्वारा विशेषरूपसे रक्त हैं—अनुरागी हैं, वेही विरक्त माने जाते हैं, ऐसा मेरा मत है।

जो द्वेष-क्रोधादि-दुर्गुणोंका गुलाम है, वह विरक्त-साधु कैसे माना जा सकता है? घर-बार छोड़नेमात्रसे एवं लंगोटी लगाकर इधर-उधर घूमने मात्रसे ही यदि कोई विरक्त बन जाता हो, या मोक्ष-प्राप्तिका पासफोर्ड प्राप्त कर लेता हो तो जंगलमें रहनेवाले उन बंदर-गीदड़ आदि पशुओंकोभी विरक्त-साधु मानना चाहिये, मोक्षलाभका लाईसेन्स उन्हें भी मिलना चाहिये। जो वे इतने विरक्त हैं कि-एकफटी पुरानी लंगोटी भी नहीं लगाते, सख्त—थण्डी पडनेपर एवं वर्षाकी झडियां लगनेपर भी कम्बलकी तो क्या बात? एक खद्दरकी चद्दरभी नहीं ओढते। सच्चा—विरक्त—साधुमहात्मा वह है—जिसके जीवनमें मनुष्योंके प्रति क्या? प्राणिमात्रके प्रति आत्मप्रेम, सद्भाव एवं सेवा-भाव है। द्वेष करनेवालेके प्रति भी जो द्वेषभाव नहीं रखता, किन्तु प्रेमभाव रखता है। जिसका जीवन परोपकारमय है, जिसके जीवनमें क्षमा, दया, शान्ति एवं प्रसन्नता लबालब भरी रहती है। इसलिए गोस्वामीजीने कहा है कि—

परहित सरिस धर्म नहीं भाई । परपीडासम नहीं अधमाई ।

अतएव हमारे प्रामाणिक–शास्त्र कहते हैं कि—

क्रुध्यन्तं न प्रति क्रुध्यात्, आक्रुष्टं कुशलं वदेत् ।
अतिवादान् तितिक्षेत, नावमन्येत कञ्चन ॥

अर्थात् जो क्रोधकरनेवालेके प्रति भी क्रोध नहीं करता, खरान-कटु बोलने वालोंके प्रति भी जो अच्छा–मधुर ही बोलता है । मिथ्या-बकवादोंको झूठे–आरोपोंको—जो शान्ति से सहन कर लेता है, उनसे जो व्यथित नहीं होता । किसीका स्वप्नमें भी अपमान नहीं करता, किसीका बुरा नहीं चाहता, नहीं कहता एवं नहीं करता, जिसके हृदयमें भलाई का ही प्रशस्त अमृत भरा रहता है, वही सच्चा त्यागी महात्मा है । जो सबमें अपने सर्वात्मा भगवान् की ही प्रेममयी–आनन्दमयी भावना हरदम बनाये रखता है । देहोंके गुणदोषोंको न देखकर देव-परमात्माके ही सद्भाव, चिद्भाव, एवं आनन्दभावका ही अवलोकन करता हुआ नूतन स्वस्थ–प्रसन्न—बालवत् निर्द्वन्द्व एवं विमल आनन्द विभोर ही बना रहता है ।

अतएव हमारे अतिधन्य–शास्त्रोंमें ज्ञानके यही लक्षण बतलाये हैं कि—

अक्रोध-वैराग्यजितेन्द्रियत्वं, क्षमा दया सर्वजनप्रियत्वम् ।
निर्लोभदानं भयशोकहानं, ज्ञानस्य सन्ति दशलक्षणानि ॥

अर्थात् जिस पुण्यवान् महापुरुपके हृदयमें तत्त्वज्ञानकी आनन्द-मयी विमलज्योतिः सदा जगमगाती रहती है, उसके पावन-जीवनमें ये दश लक्षण (ज्ञापकचिन्ह) प्रकट रहा करते हैं । (१) अक्रोध (२) वैराग्य (३) जितेन्द्रियत्व (संयम–सदाचार) (४) क्षमा (५) दया (६) सर्वजन-प्रियता (७) लोभ–कृपणताका अभाव (८) दान–उदारता (९) भयकी निवृत्ति–निर्भयता (१०) एवं शोकका सर्वथा अभाव । इन लक्षणोंसे

विपरीत क्रोधादि लक्षण, जहां रहते हैं, वहां ज्ञानका विरोधी अज्ञान का ही या मिथ्याज्ञानका ही साम्राज्य है—भलेही वह वेदान्तादिशास्त्रों की अनेकविध-बातें सुनानेमें प्रवीण—पण्डित भी क्यों न हो? वह ज्ञानी नहीं अज्ञानी है, ऐसा समझना चाहिये।

अतएव आनन्दकन्द-श्रीभगवान्‌ने भी गीतामें कहा है कि—

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥ (४–१०)

कामक्रोधवियुक्तानां, यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं, वर्तते विदितात्मनाम् ॥ (५–२६)

अर्थात् जो सज्जन ज्ञानरूपीतपद्वारा पवित्र होगये हैं; वे राग, भय एवं क्रोधसे सर्वथा विमुक्तहोजाते हैं; उनका हृदय सर्वदा भगवन्मय ही बना रहता है, जो सर्वथा श्रीभगवान्‌के ही शरणापन्न बने रहते हैं, ऐसे बहुत ही भाग्यवान् जन, भगवद्भावको प्राप्त होगये हैं। जिन्होंने अपने आत्माको आनन्दपूर्ण–अद्वय–ब्रह्मरूपसे जान लिया है, ऐसे यति (प्रयत्नशील) महापुरुष अपने चित्तको अपने वशमें ही सर्वथा रखते हैं, अतएव वे काम एवं क्रोधके वशमें नहीं होते, उन्हें सर्वतरफसे ब्रह्म—निर्वाणरूप-मोक्षके विमल–आनन्दका ही सतत अनुभव होता रहता है।

## भक्त–विद्वान्–सन्तका संग एवं प्रायश्चित ।

उन विरक्तोंका साथ छोड़कर अब मैं एकाकी ही घूमने लगा। बीचमें दो–अन्य महात्माओंका साथ होगया। उनमें एक महात्मा कुछ विशेष पठित थे, गीता–उपनिषद्–भागवतादि–अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता थे। भावुक–भक्त–हृदयके एवं कट्टर धर्म-चुस्त थे। वे विशेषरूपसे श्रीमद्भागवतके अभ्यासी थे। अतः वे श्रीमद्भागवतके अनेकों–श्लोक बड़े प्रेमसे सुनाते थे, सुनाते समय वे भावाविष्ट एवं आनन्द—विभोर हो जाते थे। साथमें पदच्छेद, अन्वय, समास, व्युत्पत्ति आदिके द्वारा

उन श्लोकोंके प्रशस्त-भावों को अच्छे-ढंगसे समझाते थे। उन श्लोकोंको मैं अपनी नोट-बुकमें लिख लेता था एवं कण्ठस्थ भी कर लेता था। उनमेंसे कुछ श्लोक यहाँ सेंपलरूपसे प्रदर्शित किये जाते हैं—

अनीह एतद् बहुधैक आत्मना, सृजत्यवत्यत्ति न बध्यते यथा।
भौमैर्हि भूमिर्बहुनामरूपिणी, अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम्॥
(भा० १०।८४।१७)

जैसे पृथ्वी अपने विकारों—वृक्ष, पत्थर, घट, पट, मठ, आदिके द्वारा बहुत से काल्पनिक नाम और रूप ग्रहण कर लेती है, वास्तवमें वह काल्पनिक-नामरूपविवर्जित-एक ही है, वैसे ही हे भगवन्! आप एक-अद्वय और चेष्टाविहीन-निष्क्रिय होने पर भी अनेक काल्पनिक नाम-रूप धारण कर लेते हैं; और अपने आपसे ही—इस जगत् की रचना, रक्षा और संहार करते हैं। पर यह सब करते हुए भी आप इन कर्मोंसे कभी लिप्त नहीं होते। जो आप सजातीय--विजातीय और स्वगतभेदशून्य—एकरस-अनन्त-अद्वय हैं, उसका यह चरित्र मायिक-लीलामात्र नहीं, तो और क्या है? धन्य है आप-भूमाकी यह विचित्र—लीला!।

'यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके, स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिद्, जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः॥'
( भा० १०।८४।१३ )

श्रीभगवान् कहते हैं-हे महात्माओं! जो मनुष्य, वात पित्त और कफ-इन तीन धातुओंसे बने हुए-शवतुल्य-शरीरको ही 'मैं' अपना आत्मा मानता है, एवं स्त्री, पुत्र, गृहादिको ही अपनी चीज मानकर उनमें ममता रखता है; और मिट्टी, पत्थर, काष्ठ आदि पार्थिव--विकारोंको ही अपना इष्टदेव मानता है, तथा जो केवल जलको ही तीर्थ समझता है, ज्ञानी महापुरुषोंका-तीर्थरूप मानकर-आदर सत्कार नहीं करता है, वह

मनुष्य होनेपर भी पशुओंमें भी नीच गधा ही है।

'अविद्यमानोऽप्यवभासते यो, वैकारिको राजससर्ग एषः ।
ब्रह्म स्वयंज्योतिरतो विभाति, ब्रह्मेन्द्रियार्थात्मविकारचित्रम् ॥'
एवं स्फुटं ब्रह्मविवेकहेतुभिः, परापवादेन विशारदेन ।
छित्वाऽऽत्मसंदेहमुपारमेत, स्वानन्दतुष्टोऽखिलकामुकेभ्यः ॥'

(भा० ११।२८।२२-२३)

यह जो विकारमयी राजस-सृष्टि है, यह वस्तुतः न होने पर भी दीख रही है। यह परमार्थ--दृष्टिसे स्वयंप्रकाश-ब्रह्म ही है। इसलिये इन्द्रिय, विषय, मन, और पञ्चभूतादि-जितने चित्र-विचित्र नामरूप हैं, उनके रूपमें ब्रह्म ही प्रतीत हो रहा है। ब्रह्म--विचारके साधन हैं-श्रवण मनन, निदिध्यासन; और स्वानुभूति। उनमें सहायक हैं-आत्मज्ञानी गुरुदेव। इनके द्वारा विचार करके स्पष्टरूपसे देहादि--अनात्म-पदार्थोंका निषेध कर देना चाहिये। इस प्रकार निषेधके द्वारा आत्मविषयक-संदेहोंको छिन्न-भिन्न करके अपने आनन्द-स्वरूप--आत्मामें ही निमग्न होजाय और सब प्रकारकी विषय-कामनाओंसे रहित होजाय।

'न वै सतां त्वच्चरणार्पितात्मनां, भूतेषु सर्वेष्वभिपश्यतां तव ।
भूतानि चात्मन्यपृथग्दिदृक्षतां प्रायेण रोषोऽभिभवेद्यथा पशुम् ॥'

( भा० ४।६।४६ )

ब्रह्माजी कहते हैं-हे महेश्वर ! शंकर ! जो महानुभाव आपके चरणोंमें अपनेको समर्पित कर देते हैं, जो समस्त प्राणियोंमें आपके शुद्ध-आत्म-स्वरूपकी ही झाँकी करते रहते हैं, और समस्त-चराचर-जीवोंको अभेद-दृष्टिसे अपने महान्-आत्मामें ही देखते हैं, वे विवेकहीन-पशुओंके समान प्रायः क्रोधादि-विकारोंके आधीन नहीं होते।

'अथानघाङ्घ्रेस्तव कीर्तितीर्थयो--रन्तर्बहिःस्नानविधूतपाप्मनाम् ।

भूतेष्वनुक्रोशसुसत्त्वशीलिनां, स्यात्संगमोऽनुग्रह एष नस्तव ॥'

(भा० ४।२४।५८)

हे प्रभो ! आपके (संस्मृत) विमल-चरण सम्पूर्ण-पापराशिको सद्यः हर लेते हैं। हम तो केवल यही चाहते हैं कि—जिन महानुभावोंने आपकी प्रशस्तकीर्ति और पावनतीर्थ (गंगाजी) में आन्तरिक और बाह्य स्नान करके मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकारके पापोंको धो डाला है, तथा जो जीवोंके प्रति दया, रागद्वेषरहित-चित्त तथा सरलता आदि गुणोंसे युक्त हैं, उन आपके भक्त-जनोंका संग, हमें सदा प्राप्त होता रहे। यही हम पर आपकी बड़ी कृपा होगी।

यत्रेदं व्यज्यते विश्वं, विश्वस्मिन्नवभाति यत्।
तत् त्वं ब्रह्म परं ज्योतिराकाशमिव विस्तृतम् ॥

यो माययेदं पुरुरूपयाऽसृजद्, बिभर्ति भूयः क्षपयत्यविक्रियः।
यद्भेदबुद्धिः सदिवात्मदुःस्थया, तमात्मतन्त्रं भगवन् ! प्रतीमहि ॥

(भा० ४।२४।६०-६१)

जिस अधिष्ठानमें यह समग्र-जगत् दिखायी देता है, और जो स्वयं सम्पूर्ण जगत् में अस्ति-भाति-प्रियरूपसे भास रहा है, वह आकाशके समान विस्तृत और परमप्रकाशमय-अद्वय-ब्रह्मतत्त्व आप ही हैं। भगवन् ! आपकी माया अनेक-प्रकारके काल्पनिकरूपोंको धारण करती है। इसीके द्वारा आप इस-प्रकार जगत् की रचना पालन और संहार करते हैं—जैसे यह नामरूपात्मक-जगत् कोई सद्वस्तु हो। तथापि इससे आपमें किसी प्रकारका विकार नहीं आता। माया के कारण लोगोंमें भेदबुद्धि उत्पन्न होती है, आप परमात्मा पर वह अपना प्रभाव डालनेमें असमर्थ होती है। आपको तो हम परमस्वतन्त्रही समझते हैं।

उस विद्वान्—भावुक महात्माके साथ भ्रमण करनेमें मुझे बड़ी-आनन्दकी अनुभूति होने लगी। और साथमें विद्याका लाभ भी

मिलने लगा। एक समय भ्रमणमें हमें दोरोज-तक भिक्षा नहीं मिली, केवल गन्नेका कुछ रस पीकर ही दोदिन उपवासमय ही बिताने पड़े। तीसरे रोज प्रातः एक ग्राममें गये। वहां ग्रामके वाहर एकान्तस्थलपर छोटीसी फुसकी कुटिया मिली, उसमें एक गृहस्थ रहता था, उसने हमारा स्वागत किया, भिक्षाके लिए पूछा। हमारे साथका एक महात्मा सहसा बोल उठाकि-हमें बड़ी-कड़ी भूख लगी है, शीघ्रही भिक्षाका प्रबन्ध करो। उसने हमें दश बजेके भीतर ही अपने घरमें लेजाकर गरमा-गरम रोटी आदि की भिक्षा करा दी। कुछ विश्रान्ति लेकर हम वहाँसे चलते बने। तीन मिलकी दूरीपर एक-तपस्वी ब्रह्मचारी मिला। जो एक शिवालयके समीपकी कुटियामें रहता था, और वह केवल इक्षु-रस एवं दूध ही पीता था। बातबातमें हमारे उस एक महात्माने आगेके ग्रामके गृहस्थके यहाँकी भिक्षाका वृत्तान्त सुनाया। ब्रह्मचारीने कहा-वह गृहस्थ तो आर्यसमाजी है, उसने एक मुसलमानी शुद्धकर अपने घरमें बिठा रक्खी है। हमारे इस धर्मचुस्त-विद्वान् महात्माकोभी निश्चय होगया कि—उसके घरमें परोसनेवाली एवं भोजनबनानेवाली वही होगी। अब वे छटपटाने लगे, कहने लगे-हमें प्रायश्चित करना होगा। यहांसे छःसात मिलकी दूरीपर श्रीगंगाजी है, उसके पावन-तटपर जाकर तीनरोज तक उपवास किया जायगा, केवल गंगाजलका ही पान किया जायगा; और साथमें गीता एवं उपनिपद् की पारायणें तथा मन्त्र-जप किया जायगा। द्वितीय महात्माभी सहमत होगया, मैंने भी उसमें भाग लेना उचित समझा। विचार कियाकि—इसी बहाने कुछ तपश्चर्याका पुण्यलाभ भी मिलेगा। उनके साथ गंगातटपर पहुंचकर हमने विधिवत् प्रायश्चित किया। चतुर्थ-रोज प्रातः खिचडी एवं दही खाकर पारणा किया।

## भूखका सुख।

वहांसे हम हस्तिनापुरका जंगल देखनेके लिए चलपड़े। पुस्तक-कंबलादिका लटापटा सिरपर धरकर गले तकके पानीके भीतर चलकर

गंगाजीको पार किया। सात-आठ मिल चलनेपर आठ-दश घरोंका एक ग्राम आया। वहां पहुंचनेपर सूर्यास्त होगया, किसानकी एक चोपालमें हम ठहर गये। पेटमें ऐसी कड़ी भूख लगी थी कि-न पूछो बात, मानों उदरमें चूहे दण्ड-कसरत कर रहे हों। सच्चिदानन्द-ब्रह्मकी भावना के स्थानपर मानसपटलपर अन्नं-ब्रह्मकी भावना जोरोंसे होने लगी। उतनेमें एक श्रद्धालु किसान आया, उसने भोजनके लिए पूछा, उसके शब्द, गहन-अंधकारमें भी विधुर-युवकके प्रति कहे गये विवाहके शब्दोंके समान बड़े ही मधुर एवं आह्लादक प्रतीत हुए। वह शीघ्रही मोटे-मोटे जाड़े छः टिक्कड बनाकर ले आया, और साथमें चनेके हरे पत्तोंका शाकभी। उसने हमारे तीनोंके हाथोंमें दो-दो टिक्कड रख दिये। उनके भक्षणमें जैसा सर्वोत्तम-स्वादसुख मिला, वैसा अभीतकके विविध छप्पन-भोगके मिष्टान्नादिसे भी नहीं मिल सका। इसलिए-विवेचक विद्वान् कहते हैं कि—स्वाद-सुख भोजनमें नहीं है-किन्तु बढिया भूखमें है। भूख न हो तो बढिया भोजन भी स्वाद-सुख नहीं दे सकते। और भूख होनेपर घटिया-भोजन भी बड़ा रुचिकर एवं सरस बन जाता है। इसलिए बढिया-भूख लगने परही भोजन करना चाहिंये। व्याधिके समान जब भूखकी वेदना मालूम पड़े-तबही भोजनके लिए मुख खोलना चाहिंये, नहीं तो उसे बन्दही रखना योग्य है। अतएव भगवत्पाद आचार्य श्रीशंकरने-संन्यासी-परिव्राजकोंके लिए यह क्या ही बढिया उपदेश दिया है कि—

> क्षुद्व्याधिश्च चिकित्स्यतां प्रतिदिनं भिक्षौषधं भुज्यताम्,
> स्वाद्वन्नं न तु याच्यतां विधिवशात्प्राप्तेन सन्तुष्यताम्।
> शीतोष्णादि विषह्यतां, न तु वृथा वाक्यं समुच्चार्यताम्,
> औदासिन्यमभीप्स्यतां, जनकृपानैष्ठुर्यमुत्सृज्यताम् ॥
>
> (उपदेश-पंचक)

क्षुधारूपी-व्याधिके निवारणके लिए प्रतिदिन भिक्षारूपी औषधि

का सेवन करो, अर्थात् व्याधिके समान जब क्षुधा व्यथित करे, तभी ही भिक्षा ग्रहण करनी चाहिये एवं औषधिकी भांति अनासक्ति-भावसे भिक्षाका सेवन करना चाहिये। तथा स्वादिष्ट—भोजनकी कदापि अभिलाषा मत करो, किन्तु प्रारब्धानुसार जैसीभी भिक्षा मिल जाय, उसीमें ही सन्तुष्ट रहो, अर्थात् बढिया-क्षुधाके द्वारा-भिक्षाको स्वादिष्ट एवं सन्तोषजनक बनाओ। शीत-उष्ण,-मान-अपमान, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंको शान्ति एवं आनन्दसे चुपचाप सहन करो, अर्थात् इनसे कदापि व्यथित मत बनो। भूलसे भी कभी व्यर्थ-वाक्यका उच्चारण मत करो। उदासीनता यानी असंग-निर्विकार-शान्त-तटस्थ अवस्थाको हरदम धारण करो। और मनुष्यादि-प्राणियोंपर रागमूलक कृपाभावका तथा घृणा एवं द्वेषमूलक—निष्ठुरताका भी परित्याग करो।

## रात्रिमें व्याघ्रदर्शन।

वहां आरामसे रात्रि व्यतीत कर प्रातः हम हस्तिनापुरके जंगलमें पहुंच गये। पाण्डवेश्वरमहादेवके दर्शन किये, हस्तिनापुरके इधर-उधरके खण्डहरोंका निरीक्षण किया, उस जंगलमें हमें एक-महात्माकी छोटीसी कुटिया मिली। भिक्षा पाकर-कुटियाके बाहर एक छप्परसा डाल रक्खा था—उसके नीचे हम तीनों महात्मा सो गये। रात्रिके दो-तीन बजे एक लम्बा चौड़ा वनराज-व्याघ्र आधमका। हमारा वह विद्वान्-महात्मा उस समय बैठकर—'प्रविश्य रजनीपादं, ब्रह्मध्यानं समाचरेत्।' (अर्थात् रजनीके अन्तिम-चतुर्थभागमें प्रवेशकरने पर मुमुक्षु उस समय ब्रह्मकाही ध्यान करे, निद्राके आधीन न होवे) के अनुसार भगवच्चिन्तन कर रहा था। व्याघ्रने बड़े जोरोंसे गर्जना किया। उसकी गर्जना सुनकर मेरी भी आंखे खुल गई। मैं भी चुपचाप बैठ गया, उस महात्माने आश्वासन देते हुए कहा—ब्रह्मचारी! डरना मत, देख! सामने भयंकररूपसे नरसिंह भगवान् खड़े हैं। उनकी जगमगाते-अंगारों-जैसी आंखें कैसी बढिया चमक रही हैं। महात्मा ऐसा मन्द-स्वरसे कह ही रहा था—उतनेमें शेरने पुनः गर्जना किया। समग्र-अरण्य उसकी

निर्भीक—गर्जनासे प्रतिध्वनित हो उठा। वृक्षोंपर छिपे हुए बंदरादि क्षुद्रप्राणी डरके मारे चींचीं करने लगे, इसलिए व्याघ्र वनराज कहा जाता है। क्योंकि-वह वनके समग्र-प्राणियोंपर राजा जैसा प्रभाव रखता है। उस कुटियावाले साधुने हमारे समीपही लकड़ियोंका एक-धूना चेता रक्खा था, सुननेमें आया है कि—व्याघ्र अग्निके समीप नहीं आता, १०-१५ मिनट वहां रहकर-अपना प्रभावशाली दर्शन देकर उछलता-कूदता हुआ व्याघ्र वहांसे भाग गया। इतने समयतक व्याघ्र, हमें दर्शन देनेके लिए रुक गया होगा, या कविकी इसप्रकारकी कल्पना-रूप कारणसे; भगवान् जाने। कविकी कल्पना इसप्रकार है—

गर्जन्हरिः साम्भसि शैलकुञ्जे, प्रतिध्वनीनात्मकृतान्निशम्य।
पदं बबन्ध क्रमितुं सरोषः, प्रतर्कयन्नन्यमृगेन्द्रनादम्॥

अर्थात् जलके समीप स्थित-शैलकुञ्जमें गर्जनाकरता हुआ व्याघ्र, अपनी ही गर्जनाकी प्रतिध्वनि सुनकर-संभव है—यह ध्वनि मेरे प्रति-द्वन्द्वी-अन्य वनराज-व्याघ्रकी हो—ऐसी कल्पना करता हुआ, रोषके साथ उसपर आक्रमण करनेके लिए कुछ समयतक अपने पैरोंको उछलने कूदनेसे रोक लेता है। यह भी एक भ्रान्तिका नमूना है, जो समग्र विश्वमें विस्तृत है। प्राणी अपनेही शुभाशुभ-भावोंको अन्यत्र भी प्रतिबिम्बरूपसे देखता रहता है। युधिष्ठिर सभीको सज्जनरूपसे, एवं दुर्योधन सभीको दुर्जनरूपसे ही देखता था, यह इतिहास प्रसिद्ध बात है। ज्ञानीभक्त—अखिलविश्वको भगवद्रूप मानकर रागद्वेपसे रहित होकर-परमशान्ति-सुखका आस्वाद लेता रहता है—तो अज्ञानीमूढ समस्तजगत् को भगवद्रूपसे पृथक् मानकर-उसमें इष्टानिष्टभावोंको बांधकर—रागद्वेष करता हुआ सदा दुःखी बना रहता है। यह भी अपने ही हृदयके सत्यभावके एवं मिथ्याभावके प्रतिबिम्बका फल हीतो है। अतएव नारायणस्वामी ने कहा है कि—

'नारायण' जाके हृदय, सुन्दर--श्याम समाय।
फूल--पात--फल--डारमें ताको वही लखाय ।।

## हस्तिनापुर—एवं शुकताल।

हस्तिनापुर इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) से पृथक् है। हस्तिनापुर, गंगातट पर है, तो इन्द्रप्रस्थ यमुनातटपर। हस्तिनापुर कौरवोंकी राजधानी थी, और इन्द्रप्रस्थको पाण्डवोंने बसाकर अपनी अभिनव राजधानी बनायी थी। जो संप्रति स्वतन्त्र—भारतकी राजधानी है। हस्तिनापुर अब केवल नामावशेष एवं कुछ खण्डहरोंको दीखाता हुआ ऊँचेनीचे टीलोंवाला जंगल ही रह गया है।

वहांसे घूमते हुए हमनें जिस स्थानपर-अवधूतशिरोमणि-श्रीशुकदेवजीने राजा—परीक्षित् को पुराण—सार्वभौम—वेदान्तसारसर्वस्वरूप श्रीमद्भागवतकी पारायण सातरोजतक सुनाकर—ब्रह्मनिर्वाण—पद प्राप्त-कराकर सदाके लिए निर्भय बना दिया था—उस पावनस्थलका बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ दर्शन किया। और हमारे महात्माने कहा कि—

'अत्राययौ षोडशवार्षिकस्तदा, व्यासात्मजो ज्ञानमहाब्धिचन्द्रमा।
निर्द्वन्द्वशान्तो निजलाभपूर्णः, प्रेम्णा पठन् भागवतं शनैः शनैः ।।'

इसी ही स्थल पर—उससमय सोलहवर्षकी-सी आयुवाला आत्म लाभसे पूर्ण, निर्द्वन्द्व एवं शान्त, ज्ञानरूपी—महासागरका संवर्धन करने के लिए चन्द्रमाके समान—व्यासनन्दन—श्रीशुकदेवजी—जो प्रेमसे धीरे—धीरे श्रीमद्भागवतका पाठ करते हुए—पधारे हुए थे।

यः स्वानुभावमखिल---श्रुतिसारमेकं,
अध्यात्मदीपमतितितीर्षतां तमोऽन्धम्।
संसारिणां करुणयाऽऽह पुराणगुह्यं,
तं व्याससूनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम् ।। (भा० १।२।३)

यह श्रीमद्भागवत अत्यन्त-गोपनीय-रहस्यात्मक महापुराण है। यह भगवत्स्वरूपका अनुभव कराने वाला और समस्त-वेदोंका सार है। संसारमें फंसे हुए-जो लोग इस घोर अज्ञानान्धकारसे पार जाना चाहते हैं, उनके लिये आध्यात्मिक-तत्त्वोंको प्रकाशित करनेवाला यह एक-अद्वितीय दीपक है। वास्तवमें उन्हींपर करुणा करके बड़े-बड़े-मुनियोंके आचार्य-श्रीशुकदेवजीने इसका वर्णन किया है, मैं उन महान् सद्गुरुकी शरण ग्रहण करता हूँ।

इसलिये—

जगति शुककथातो निर्मलं नास्ति किञ्चित्,
पिब परमसुखहेतो-र्द्वादशस्कंधसारम्।

हे ब्रह्मचारिन्! संसारमें इस शुक-शास्त्र-श्रीमद्भागवतसे अधिक पवित्र और कोई वस्तु नहीं है, अतः तू परमानन्दकी प्राप्तिके लिए इस द्वादशस्कंधरूप-दिव्य-रसका पान कर।

इसप्रकार श्रीमद्भागवतकी खूब प्रशंसा करके उस महात्माजीने मुझे अच्छी प्रकारसे श्रीमद्भागवतके स्वाध्यायकी शुभप्रेरणा की। पश्चात्—

'यस्य तुण्डाच्च्युतश्चूतो राजतेऽयं रसात्मकः।
वन्देऽच्युतकथाकुञ्जे सुकुजन्तं शुकं मुनिम्॥'

अर्थात् जिसके मुखाघातसे गिरा हुआ-मधुर-रसनिधि यह श्रीमद्भागवतरूप-परिपक्व-आम्रफल अतीव शोभायमान होरहा है (यह लोकमें प्रसिद्ध है कि-तोतेका काटा हुआ फल अधिक मधुर होता है) उस अच्युत-भगवान् श्रीकृष्णकी कथारूपी-कुञ्जमें अत्यन्त-प्रेमसे कूजन (मधुर-निनाद) करने वाले-शुक मुनिकी मैं वन्दना करता हूँ। इस श्लोकसे श्रीशुकदेवको वन्दन करके हम आगे बढे।

यह तीर्थस्थल बहुत ही रमणीय है, गंगा तटपर एक ऊँचे टीले पर विशाल-वट वृक्षके नीचे इसका स्मारक बनाया गया है। इसलिये

यह शुक-ताल नामसे प्रसिद्ध हुआ है। अब तो नहीं, परन्तु उस समय गंगाजी ने वर्तुलाकाररूपसे तालाव जैसा दृश्य बनाया होगा-इसलिये शुकदेवके तालाव का नाम ताल होगया, ऐसी लोग किंवदन्ती सुनाते हैं। समीपमें दो-तीन आश्रम हैं, अन्नक्षेत्र लगे हुए हैं, १०-२० साधु निवास करते हैं।

## हरिजनोंका गंगामन्दिर एवं मठ।

वहाँसे हम घूमते हुए-गंगा किनारे पर दूरसे भी दिखाई पड़ने वाले-एक मन्दिर पर गये। इस मन्दिरमें श्रीगंगाजीकी बढ़िया प्रतिमा प्रतिष्ठित थी, उसे हमने बड़ी श्रद्धासे प्रणाम किया। और समीपमें ही पावन-जलरूपसे बहने वाली श्रीगंगाजीकी इस प्रकार स्तुति की—

'समृद्धं सौभाग्यं सकलवसुधायाः किमपि यन्,
महैश्वर्यं लीलाजनितजगतः खण्डपरशोः।
श्रुतीनां सर्वस्वं सुकृतमथ मूर्तं सुमनसां,
सुधासौन्दर्यं ते सलिलमशिवं नः शमयतु ॥

(पण्डितराज-जगन्नाथकृत-गंगालहरी)

गांगं वारि मनोहारि, मुरारिचरणच्युतम्।
त्रिपुरारिशिरश्चारि, पापहारि पुनातु नः ॥

(महर्षि-वाल्मीकि)

यह श्रीगंगाजीका पावन जल, समस्त-पृथिवीका खूब ही बढ़ा चढ़ा सौभाग्य है, जिसने लीलामात्रसे समग्र-जगत्का प्रादुर्भाव किया है-ऐसे भगवान् श्रीशंकरका यह कुछ-अवर्णनीय-महान्-ऐश्वर्य है। श्रुतियोंका सर्वस्व सारभूत-तत्त्व है, देवोंका मूर्तिमान्-पुण्य है, एवं अमृतका सौन्दर्य है, ऐसा पावन गंगा-जल हमारे सभी कल्याण-विरोधी कल्मषोंका शमन करे। गंगाका जल मनोहर है, अर्थात् देखनेमें अतीव सुन्दर है, एवं पीनेमें अत्यन्त-शीतल तथा मधुर है, जो मुरारी-श्रीविष्णु

के चरण-कमलसे विनिर्गत है, तथा त्रिपुरारी-श्रीशंकरके मस्तकमें जो विहरण करता रहता है—ऐसा पापोंका हरण करनेवाला पावन-जल हमें भी पवित्र करे।

पश्चात् भगवत्पाद-आचार्य-श्रीशंकरके इन शब्दोंमें हमने श्रीगंगा जीसे प्रार्थना की—

'मात र्जाह्नवि ! शम्भुसंगवलिते ! मौलौ निधायाञ्जलिं,
त्वत्तीरे वपुषोऽवसानसमये नारायणाङ्घ्रिद्वयम् ।
सानन्दं स्मरतो भविष्यति मम प्राणप्रयाणोत्सवो,
भूयाद्भक्तिरविच्युता हरिहराद्वैतात्मिका शाश्वती ।।

अर्थात् हे मातः जाह्नवी ! हे भगवान् श्रीशंकरकी जटाओंमें वलय (कंकण) के समान वर्तुलाकारको धारणकरने वाली ! मैं अपने मस्तकपर अंजलि बाँधकर तुझसे ऐसी प्रार्थना करता हूँ—कि-देहावसानके समय तुम्हारे पावन तट पर—श्रीमन्नारायण—भगवान्के दोनों चरण कमलोंका आनन्दपूर्वक—एकाग्रतासे स्मरण करते हुए—मेरे प्राण-प्रयाण का उत्सव हो, उस समय मेरे हृदयमें हरिहरमें अभेदभाववाली—अद्वैत ज्ञानमयी—अविचल—अनन्या-विशुद्ध—प्रेमभक्ति बनी रहनी चाहिये।

गंगाजीके मन्दिरके समीप एक छोटा-सा आश्रम था। उसमें दो-तीन तखत बिछे थे। उसके महन्तजी एक छोटीसी गद्दीपर बिराजमान थे। हमने जाकर उन्हें सादर 'ॐ नमो नारायणाय' कहा। उसने प्रत्युत्तरमें अभ्युत्थित होकर 'ॐ नमो नारायणाय' कहकर स्वागत किया। कहाँ से आरहे हैं, कहाँ जा रहे हैं, ? इत्यादि शिष्टाचारकी बातें हुई। समीपके तखत पर अपने बिस्तरादि रखकर हम बैठ गये। प्रातः करीब नव-दश बजेका समय होगा। हमारे सहचर उस महात्माने महन्तजीसे कहा—यहाँ क्या हमें भिक्षा मिलेगी ?। कलसे हम क्षुधित हैं। उस महन्तजीने प्रेमसे कहा—अवश्य ही भिक्षा मिलेगी, परन्तु तुम्हें अपने हाथोंसे भिक्षा बनानी पड़ेगी। हम तुम्हें कच्चा सीधा—सामान, पात्र, लकड़ी आदि दे

देते हैं, अपने हाथोंसे बनाओ और प्रेमसे पाओ। हम सहमत हो गये, बडी प्रसन्नता हुई। कल कुछ भी भिक्षा नहीं मिली थी, आज भगवती श्रीगंगा-माताने बढ़िया भिक्षा परिश्रम-साध्या दिला दी। महन्तजी की आज्ञासे उसके एक चेलेने तुरन्त ही आटा, दाल, चावल, नमक, हल्दी, मसाला. घीका भरा कटोरा सभी सामान सामने रख दिया। तुरन्त ही हम और वह महात्मा गंगा स्नानके लिए चल पड़े। स्नानकर उपनिषदादिके–अनेक श्लोक बोलते हुए आश्रममें हम अपने गीले-कपड़े सुखाने लगे।

हमारा वह विद्वान्-महात्मा वहाँ ही बैठा रहा—और हम गंगास्नान करने चले गये—उस अरसेमें हमारे महात्माने उसके चेले से पूछा कि–यह किस संप्रदायका मठ है, ? दशनामी-संन्यासीका, कि–उदासी या दादूपंथका, किसका है ?। उसने कहा–यह रोहिदास पंथका मठ है, हम सब रोहिदासी साधु हैं। हमारा वह विद्वान्-महात्मा समझ गया कि–यह हरिजनों (चर्मकारों) का मठ है; और यहाँ इनके ही साधु बिराजमान हैं। अब हमारा वह धर्मचूस्त महात्मा गहरे-विचारमें पड़ गया अब क्या करना चाहिये ?। यदि यहांसे भिक्षा किये विना ऐसे ही चले जाते हैं तो इस महन्तको–'मेरे अतिथि मेरे ही द्वारसे भूखे ही चले जारहे हैं, या ये भूखे नहीं जा रहे हैं, किन्तु हमारी हीनजातीयता का तिरस्कार कर रहे हैं' इस बातका बड़ा भारी दुःख होगा, इसप्रकार दयालुता एवं सौहार्दवश, और यदि भिक्षा करते हैं तो हम धर्मभ्रष्ट हो जाते हैं, इस प्रकार उच्च-वर्णके अभिमानवश या शास्त्रीय–स्पृश्यास्पृश्य, भक्ष्याभक्ष्यके विवेकवश, सोचने लगा।

और हमारा वह महात्मा मेरे साहचर्यसे भोजन बनानेके लिए तैयार होरहा था, गंगाजल छिटककर भोजन बनानेकी जगह पवित्र बना रहा था। उस समय हमारे उस विद्वान् महात्माको 'धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः।' यह मनुस्मृतिका श्लोक—(अर्थात् नष्ट किया गया धर्म उसका नाश करता है, और रक्षा किया गया धर्म

उसकी रक्षा करता है,) याद आगया। और हमारे समीप आकर धीरेसे संक्षेपमें हमें समझा कर वह कहने लगा कि—चलो यहाँसे, देर मत करो। उसका आदेश पाकर इच्छा न होनेपर भी बलात् वहाँसे चलनेके लिए हम तैयारी करने लगे, पुस्तक-कंबलादि कंधेपर डालने लगे। उससमय उस स्थानीय-महन्तने देखा कि—ये महात्मा भोजन बनाये बिना ऐसे ही चले जारहे हैं, वह तुरन्त ही समझ गया। और सामने आकर कहने लगा—क्यों क्या हुआ ? भोजन क्यों नहीं बनाते ? क्यों जा रहे हो ? हमारे विद्वान् महात्माने हाथ जोड़कर नम्रतासे कहा—भगवन् ! क्षमा करें, हमारा मन नहीं मानता, हमने आपको कष्ट दिया, इसके लिए हम लज्जित हैं, आप दयालु हैं। महन्तने रोषके साथ कहा—हमतो दयालु हैं, परन्तु तुमतो बड़े निर्दयी हो, तुम हमारा अपमान कर रहे हो। हमको नीच समझते हो, हमसे घृणा-करते हो। हमारे इस आश्रममें आर्यसमाजका नेता-स्वामी श्रद्धानन्दजी आया था, यहाँ रहा था, उसने भोजन पाया था। तुम क्यों नहीं पाते ? तुम सनातनी हो, अपनेको बड़ा ऊंचा मानते हो। महात्मागांधी क्या कह रहा है, तुमको कुछ पता है कि-नहीं ? इत्यादि वह अनेक प्रकारकी बातें कहता रहा। पश्चात् उसने देखा कि—ये किसी भी प्रकारसे नहीं रुकते। तब वह हमको धमकाता हुआ अनाप-सनाप भी बोलता रहा। हम सब चुप थे, शान्तिसें वहांसे चलते बने। एक फर्लांग दूरपर स्टेशन था, वहाँ जाकर, नारायण नारायण करते हुए भूखे प्यासे बैठ गये। वहाँसे हमने हृषिकेश जानेका निश्चय कर लिया।

## प्रश्न एवं उत्तर।

उस समय मैंने जिज्ञासाभावसे अपने विद्वान्-महात्मासे प्रश्न किया—

भगवन् ! इसमें अपना कौनसा धर्म नष्ट होजाता था ? उस महन्त-बेचारे को कितना दुःख हुआ ?, अतएव वह उसके ही कारण अनापसनाप बोलने लगा था।

हमारे विवेकी—महात्माने कहा—'**धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां, महाजनो येन गतः स पन्था।**' अर्थात् धर्मका तत्त्व विद्वानोंकी हृदय गुहामें निहित है, इसलिये महान्-जन जिस मार्गसे गये हैं, वही धर्मका पथ माना गया है।

प्रश्न—तथापि—'**न केवलं शास्त्रमाश्रित्य कर्तव्यो धर्मनिर्णयः। युक्तिहीनविचारे तु धर्महानिः प्रजायते॥**' अर्थात् केवल शास्त्रका आश्रय करके धर्मका निर्णय नहीं किया जा सकता। युक्ति-हीन धर्मका विचार करनेपरतो धर्मकी हानि होजाती है। इसलिये मनुमहाराज ने कहा है कि—**यस्तर्केणानुसंधत्ते, स धर्मं वेद नेतरः।**' (म० स्मृ०१२।-१०६) जो तर्क द्वारा धर्मका अनुसंधान करता है, वही धर्मको जानता है, अन्य केवल लकीरका फकीर नहीं जान सकता। इसलिये इस विषयमें महात्मा-गांधीजीकी एवं महामना-मालवीयाजीकी धर्म एवं तर्कसंगत विचार-धाराका भी अनुसंधान रखना चाहिये। वे दोनों महानुभाव कट्टर नहीं किन्तु उदार-सनातन-धर्मी हैं, कट्टरता तो कभी तीक्ष्ण-धारवाली कटारका काम करती है—अपनेको दूसरोंको एवं देशको हानि पहुंचाती है।

उत्तर—हाँ, उनकी विचार-धारा भी कुछ—कुछ आदरणीय मालुम पडती है। परन्तु उसका समय अभी परिपक्व नहीं हुआ है। **समयः करोति बलाबलम्।**

प्रश्न—परन्तु भगवन्! आपतो अद्वैतवादी हैं, समदर्शी हैं, वर्णाश्रमके मिथ्या अभिमानसे निर्मुक्त हैं, अतः आपको ऐसा निर्बन्ध क्यों रखना चाहिये?

उत्तर—हम समदर्शी हैं, परन्तु समवर्ती नहीं होसकते। हमारे आचार्योंने कहा है—'**भावाद्वैतं सदा कुर्यात्, क्रियाऽद्वैतं न कर्हिचित्।**' अर्थात् भावका अद्वैत करना चाहिये, क्रियाका नहीं।

प्रश्न—जहाँ समदर्शन होता है? वहां क्या समवर्तन नहीं होता?। पैरमें जिह्वामें एवं चक्षुमें समभावका दर्शन होनेके कारण

पैरमें जब कांटा गड जाता है, तब जिह्वा चिल्लाकर कहती है कि–मुझे कांटा गडा है, जल्दी निकालो, मुझे वेदना होरही है, इसलिए आंखें रोने लगती हैं। अब विचार करना चाहिये कि—जिह्वाको तो कांटा नहीं गडा है, उसे वेदना कहां होरही है ? तथापि वह पैरके साथ समान वर्ताव कर रही है।

उत्तर—(हँसकर) यह समवर्तन नहीं है, किन्तु समदर्शन है। तथापि तर्क दुधारी-तलवार जैसा होता है, इधर भी लगा सकते हैं, उधर भी।

प्रश्न—तथापि आर्य-हिन्दुजातिके प्रशस्त--संगठनके लिए एवं देशको अति जघन्य-गुलामीके पाशसे मुक्त करनेके लिये एकतामूलक-उदारभावकी आवश्यकता है। उदारभाव न होनेके कारण ही अपना यह प्यारा भारत-देश हजारों वर्षोंसे विदेशी-विधर्मियोंका गुलाम बना हुआ है। आप विचार कर सकते हैं–यदि वे हरिजन–जो करोड़ों की तादाद में हैं—अपने घृणाभावसे उद्विग्न होकर धर्मान्तर कर लेंगे। ईसाई आदि बन जायेंगे, तो हिन्दु–जाति कट जायगी, वह महन्त भी वैसे ही स्वर में बक रहा था, आपने सुना होगा। करोड़ों हिन्दु जैसे यवन बनकर-अपने दुश्मन बने बैठे हैं। स्वाराज्यके साथ पाकिस्तानकी भी मांग कर रहे हैं, वैसे हरिजन भी यदि अपने समुदायसे पृथक् हो जायेंगे तो देशमें दूसरी बड़ी कठिनाई उपस्थित होजायगी। इसलिए सच्चा-धर्म वह है–जो शत्रुको भी मित्र बनादे। मित्रको शत्रु बनाने वाला सच्चा धर्म कैसे होसकता है ? और जहाँ समदर्शन होता है–वहां प्रेम, सद्भाव, सहानुभूति, मित्रता आदि सद्‌गुण अवश्य ही रहते हैं, वह घृणाभावका एवं मिथ्या अभिमानका विध्वंस कर डालता है। इसलिए मैं तो मानता हूँ कि–प्रायः समदर्शन बातोंमें ही रहता है, हृदयमें नहीं रहता।

उत्तर—(प्रसन्न होकर) तेरे ये विचार आदरणीय मालूम पड़ते हैं, कट्टरतासे हटाकर उदारभावकी तरफ ले जाते हैं।

प्रश्न —(नम्रता प्रदर्शितकर) आपने मेरे विचारोंका आदर किया है-इसलिए आपमें मेरा खूब ही श्रद्धाभाव बढ गया है। यह आपकी अभिमान-हीनताका एवं सहृदयताका ज्ञापन कराता है। और भी भगवन्! आप अद्वैतवादकी भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि-अद्वैतवाद, विवाद एवं विरोध रहित होता है, समस्त प्राणियोंके लिए हितकर एवं सुखकर होता है। इस विषयमें गौडपादाचार्यके इस वचनका प्रमाण देते हैं कि—

अस्पर्शयोगो वै नाम, सर्वसत्त्वसुखो हितः ।
अविवादोऽविरुद्धश्च देशितस्तं नमाम्यहम् ॥'

( मां० उ० का० अलात-शान्तिप्रकरण ० २)

इस अद्वैतसिद्धान्तमें किसी भी दोपका स्पर्श नहीं होता, इसलिये यह अस्पर्शयोग कहा जाता है। शब्दादि-विपयोंका उपभोग सुखकर होने पर भी हितकर नहीं होता एवं तपः आदि साधन, हितकर होनेपर भी सुखकर नहीं होते, परन्तु यह अद्वैतसिद्धान्त एक-साथ सबके लिए समान भावसे सुखकारी एवं हितकारी ही होता है। इसमें विवाद एवं विरोध कोई भी उठा नहीं सकता। क्योंकि-यह सबकी महान्ता एवं एकरूपता का प्रद्योतक है। ऐसे विवाद-विरोधरहित-अद्वैतसिद्धान्तका जिस महान् गुरुने एवं शास्त्रने उपदेश दिया है-उसे मैं प्रभूत-श्रद्धाके साथ प्रणाम करता हूँ।

और आप कहते हैं कि-इस अद्वैतवादका ही दूसरा नाम समन्वय वाद है। वह सबके साथ समन्वयका भाव स्थापित करता हुआ विवाद एवं विरोधको दूरसे ही भगा देता है। यह पंचाक्षर-अष्टाक्षरादि समस्त मन्त्रोंके साथ, शिवविष्णु आदि समस्त-देवोंके साथ, भक्ति-ज्ञानादि समस्त-साधनोंके साथ, स्मार्त-वैष्णव-शैवादि समस्त संप्रदायोंके साथ, ब्राह्मणादि समस्त वर्णोंके साथ, ब्रह्मचर्यादि-समस्त आश्रमोंके साथ समस्त देश प्रान्त एवं भाषाओंके साथ एकतामूलक समन्वयभाव स्था-

पित कर देता है। क्या ऐसा प्रशस्त प्रामाणिक-समन्वयवाद देशमें एकता एवं उदारता स्थापितकर व्यावहारिक-अभ्युदय नहीं करा सकता? इसलिये ऐसे महान्-प्रशंसनीय सिद्धान्तको सक्रिय बनाना चाहिये। बड़ी-बड़ी बातोंमें ही प्रतिरुद्ध रखकर इसे निष्क्रिय नहीं रहने देना चाहिये। श्रद्धेय महात्मन्! यह तो 'त्वदीयवस्तु गोविन्द! तुभ्यमेव समर्पये। गृहाण सम्मुखो भूत्वा प्रसीद परमेश्वर!॥' वाली बात हुई। अर्थात् हे गोविन्द! तेरी ही वस्तु मैं तुझे ही समर्पित करता हूँ। अतः तू इसे सन्मुख होकर ग्रहण कर एवं हे परमेश्वर! इससे तू प्रसन्न हो जा।

इस प्रकारकी मुझ शुक्ल-वस्त्रधारी छोटेसे-ब्रह्मचारी-साधुकी बातें सुनकर वह निरभिमानी विद्वान्-महात्मा प्रसन्न हुआ, और वात्सल्य-स्नेहसे मेरी पीठ थपथपाता हुआ शुभाशीर्वाद देता हुआ कहने लगा कि-प्रिय-ब्रह्मचारिन्! तू अच्छी एवं बड़ी-बड़ी बातें कहता है, इसलिए तू बड़ा अच्छा आदमी बनेगा। मैंने (नम्रता प्रदर्शितकर) कहा-पूज्य महात्मन्! आपका पुनीत-शुभाशीर्वाद पाकर छोटा भी बड़ा होजाता है, विद्यारहित भी विद्यावान् बन जाता है, और तो क्या? साधारण-जन मिटकर साक्षात् जनार्दन-विष्णु होजाता है, अतः महापुरुषोंकी कृपासे क्या क्या लाभ नहीं मिलते? इसलिये कहा है कि—

'यस्य प्रसादादहमेव विष्णुः, मय्येव सर्वं परिकल्पितश्च।
इत्थं विजानामि सदाऽऽत्मरूपं, तस्याङ्घ्रिपद्मं प्रणतोऽस्मि नित्यम्॥

'मैं विष्णु ही हूँ, एवं मुझ महान् अन्तरात्मामें ही यह सब नामरूपात्मक-द्वैत-प्रपञ्च कल्पित है। इसप्रकार-जिस सद्गुरुदेवकी कृपासे सदा अपने आत्मस्वरूपको जानता हूँ, उसके पावन-वन्दनीय चरणकमलमें मैं सदा अपना उत्तमांग-मस्तक श्रद्धापूर्वक झुकाता हूँ।

## हृषिकेश एवं नीलकण्ठ

स्टेशनपर इसप्रकारका सुखद-संवाद हो रहा था-उतनेमें वहाँ आकर गाड़ी खड़ी हो गई। और उसमें बैठकर हम सब सन्त महात्माओं

का पावन-धामरूप हृषिकेश पहुँच गये। यहां आकर हमने परम-पवित्र गंगाकी त्रिवेणीमें प्रेमसे स्नान किया। और उसके एकान्त-रमणीय तट पर बैठकर जप-ध्यान-पाठादि करने लगे। उस समय कोई एक सेवा-भावी भक्त वहां आया, श्रद्धाके साथ 'ॐ नमो नारायणाय' कहकर प्रार्थना करने लगा कि-भगवन्! आप तीनों महात्माओंके लिए यदि अनुज्ञा मिले तो मैं दूध और पूरी ला दूँ। आप मेरी इस छोटीसी सेवा को स्वीकार करेंगे, तो बड़ा अनुग्रह माना जायगा। हम बहुत क्षुधित तो थे ही; निश्चयसे समझा कि-इस भगवती साक्षात्-ब्रह्मद्रवस्वरूपिणी श्रीगंगामाताकी महनीय-प्रेरणासे ही यहां एकान्तमें आकर हमारी क्षुधाकी निवृत्तिके लिए ही यह प्रयत्नशील हो रहा है, तुरन्तही उसे स्वीकृति मिल गई, वह प्रसन्न होता हुआ बाजार में चला गया, और उसने शीघ्र ही गरमागरम दूध-पूरी लाकर सामने रख दीं। ब्रह्मार्पणकर प्रसाद पाकर हम सन्तुष्ट हुए।

कुछरोज हृषिकेश रहकर हम गंगापार-स्वर्गाश्रममें गये, वहां दो-तीन रोज रहकर नीलकण्ठ गये। स्वर्गाश्रमसे नीलकण्ठ-महादेव ८-१० मीलकी दूरीपर है। बीचमें पहाड़की बडी कठोर चढाई एवं उतराई पडती है। चारों तरफ पर्वतोंके शिखरोंके मध्यमें नीलकण्ठ महादेवका छोटासा मन्दिर बना हुआ है। यह मंदिर अतीव प्राचीन है, कहते हैं—दिग्विजय करते हुए-आचार्य-भगवत्पाद—श्रीशंकरस्वामीजी भी यहां दर्शनके लिए पधारे थे। सुननेमें आया है कि-कई धनवान्-भक्तोंने इसको बड़ा भव्य-मंदिर बनानेके लिए प्रयत्न किया, परन्तु भगवान् शंकरने अनेक विघ्न डाल कर बड़ा मंदिर नहीं बनने दिया। चारों तरफसे हर-हरकी मधुर-ध्वनि करते हुए—बहने वाले तीन चार झरने यहां एकत्रित होते हैं, उसमें स्नानकर भगवान् शंकरका लिंगरूपसे हमने दर्शन किया। एवं गंगाजलसे अभिषेक किया। पश्चात् एकान्तमें बैठकर महादेवके स्वरूपका चिन्तन करने लगे।

## भगवान् शंकरके साकार–स्वरूपका आध्यात्मिक–विचार ।

उस समय मैंने अपने उस श्रद्धेय–विद्वान्–महात्मासे श्रीमहादेव जी के साकारस्वरूपके विषयमें आध्यात्मिकरहस्य जाननेके अभिप्रायसे अनेक प्रश्न किये। और हमारा वह–महात्मा अनेक–श्लोक बोलकर उसका रहस्य इसप्रकार समझाने लगा।

प्रश्न—भगवन् ! भगवान् शंकर श्मशानमें क्यों निवास करते हैं ? और भूतगणों को अपने साथमें क्यों रखते हैं ? वह श्मशान एवं भूतगण क्या हैं ?

उत्तर—'नित्यं क्रीडति यत्रायं, स्वैरं द्वन्द्वाख्य–भैरवः । तत्र श्मशाने संसारे शिवः सर्वत्र दृश्यते ।।' अर्थात् यह नामरूपात्मक समग्र संसार ही श्मशान है, जिसमें यह सुखदुःखादि-द्वन्द्वसंज्ञावाला भयंकर–भैरव अबाधितरूपसे सर्वदा क्रीडा कर (खेल) रहा है, उस श्मशानरूप संसारमें अधिष्ठानरूपसे निर्विकार–निर्द्वन्द्व शिव ही सर्वत्र ज्ञानी-भक्तोंको दीखता है, इसलिये भगवान् शंकर श्मशान-वासी कहे गये हैं।

अबद्धाः सर्वतो मुक्ता भूता एव बुधा मताः ।
आनन्दसागरः शम्भुस्तच्छक्ति--द्रंव उच्यते ।
शीकरा इव सामुद्राः, तदानन्दकणा गणाः ।।

अर्थात् रागद्वेषादि–बन्धनोंसे रहित हुए, अतएव सर्वतरफसे जीवन्मुक्तिके विमल--आनन्दका अनुभव करने वाले--जो तत्त्वदर्शी विद्वान् हैं, वे ही महादेवके साथ रहनेवाले भूत-गण हैं, ऐसा मैं मानता हूँ। भगवान्–शम्भु आनन्द–सागर है, भगवान् की जो आह्लादिनी संविद्रूपा शक्ति है; वही आनन्द--सागरका द्रव कहा गया है। समुद्रके बिन्दुओंके समान, उस आनंदसागरके असंख्य–कण ही भूत–गण हैं।

प्रश्न--भगवान् शंकर दिगम्बर क्यों हैं ? उसका क्या रहस्य है ?

उत्तर—'निरावरणविज्ञानस्वरूपो हि स्वयं हरः।
स्वैरं चरति संसारे, तेन प्रोक्तो दिगम्बरः ॥

अर्थात् अविद्यादिके आवरणसे रहित—विज्ञानस्वरूप ही स्वयं हर-शंकर है, और वह स्वतन्त्ररूपसे संसारमें विचरण कर रहा है, इसलिये श्रीशिव दिगम्बर कहे गये हैं।

प्रश्न—भगवान् शंकर भस्म क्यों धारण करते हैं ? उन्हें भस्म क्यों प्रिय है ?

उत्तर—ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि, भस्मसात्कुरुते किल।
तेनैव भस्मना गात्र-मुद्धूलयति धूर्जटिः ॥
भासते भिन्नभावना--मपि भेदो न भस्मनि।
स्वस्वभावस्वभावेन, भस्म भर्गस्य वल्लभम् ॥

अर्थात् ज्ञानरूपी अग्नि, निश्चयसे समस्तकर्मोंको तथा उपलक्षण-न्यायसे अविद्या एवं समस्त-कामनाओंको भस्मीभूत कर डालती है, अतः इसी ही भस्मका भगवान् शंकर अपने विग्रह पर विलेपन करते हैं। भस्ममें भिन्न—भिन्न लकड़ी-गोबर-पत्ते आदि पदार्थोंका भेद-द्वैत भासित नहीं होता, इसलिये भस्मका अद्वैत—स्वभाव है, एवं भगवान् शंकरका भी अद्वैत—स्वभाव है, दोनोंका समान स्वभाव होनेके कारण भगवान् शंकरको भस्म प्रिय है। लोकमें भी समान--स्वभाववालोंमें ही प्रीति देखनेमें आती है, विषमस्वभाववालोंमें नहीं।

प्रश्न—भगवान् शंकर तीन—शूलोंवाला—त्रिशूल धारण कर त्रिपुरासुरको मार डालता है तो वह त्रिशूल क्या है ? और त्रिपुरासुर कौन है ?

उत्तर—'शान्ति-(भक्ति) वैराग्यबोधाख्यैस्त्रिभिरग्रैस्तरस्विभिः।
त्रिगुणं त्रिपुरं हन्ति त्रिशूलेन त्रिलोचनः ॥

शान्ति (भक्ति) वैराग्य एवं बोध, ये तीन साधन ही तीन तीक्ष्ण-भेदक-वेगवान्-अग्रसर शूल हैं, उनके द्वारा त्रिलोचन भगवान् शंकर त्रिगुणात्मक-संसाररूप-त्रिपुरासुरका हनन करता है, इसलिए श्रीशिव त्रिपुरघ्न कहा जाता है।

प्रश्न—भगवान् सदाशिव त्र्यम्बक-(त्रिनेत्र) कहा जाता है, तो इसके तीन नेत्र क्या हैं ? एवं इनके द्वारा वह क्या क्या करता है ?

उत्तर—'आप्यायनः तमोहन्ता विद्यया दोषदाहकृत्।
सोमसूर्याग्निनयनस्त्रिनेत्रस्तेन शंकरः ॥

श्रीशंकरके चन्द्र, सूर्य एवं अग्नि ये तीन नेत्र हैं, वह मुमुक्षु-भक्तोंके संसारसंतापोंका सोम-नेत्र द्वारा शमन कर उन्हें शीतल बना देता है, सूर्य-नेत्र द्वारा उनके अज्ञानान्धकारका नाशकर स्वयंज्योतिः प्रकाशमय बना देता है, और विद्यारूपी-अग्निनेत्र द्वारा कामादि-समस्त दोषोंका विध्वंसकर निरवद्य—विशुद्ध बना देता है। इसलिये शंकरके त्रिनेत्र बड़े कल्याणकारी हैं।

प्रश्न—भगवान् नीलकण्ठ भुजंगोंको आभूषणरूपसे क्यों धारण करता है ? वे भुजंग कौन हैं ?

उत्तर—'योगिनः पवनाहाराः, तथा गिरिबिलेशयाः।
निजरूपे धृतास्तेन भुजङ्गाभरणो हरः ॥

प्राणायामपरायण एवं गिरिगुहानिवासी योगी ही भुजंग हैं, जैसे सर्प पवनका आहार करते हैं, एवं पर्वतके बिलोंमें निवास करते हैं, वैसे योगीभी उनके सदृश होनेके कारण भुजङ्ग माने गये हैं। उनको जिसने अपने सच्चिदानन्द-स्वरूपमें अभेदभावसे धारण किया है-इसलिये श्रीशिव भुजंगाभरण माना गया है।

प्रश्न—श्रीशिव जटा धारण करते हैं, तो वे जटाएँ क्या हैं ?

उत्तर—'विश्रामोऽयं मुनीन्द्राणां पुरातनवटो हरः।

वेदान्तसांख्ययोगाख्याः तिस्रः तस्य जटाः स्मृताः ॥

अर्थात् यह श्रीहर; पुरातन वट-वृक्षके समान है, इसकी छत्र-छायामें मुनीन्द्रगण आनन्दसे विश्राम करते हैं। अतः इसकी वेदान्त, सांख्य, एवं योग संज्ञावाली तीन जटाएँ मानी गई हैं।

प्रश्न—वृषभ क्या है ? जिसे श्रीशिवने वाहन बनाया है।

उत्तर—'ब्रह्माद्या यत्र नारूढाः तमारोहति शंकरः।
समाधिं धर्ममेघाख्यं, तेनायं वृषवाहनः ॥
वृषो धर्म इति प्रोक्तः, तमारूढस्ततो वृषी।
एवं विधं महादेवं विदुर्ये तत्त्वदर्शिनः ॥

अर्थात् जिस धर्ममेघसंज्ञावाली-असंप्रज्ञात-समाधिपर ब्रह्मादि देव भी आरूढ नहीं होसके हैं, उसपर भगवान् शंकर आरूढ होजाता है, इसलिए परमधर्म ही वृषभ है, उसपर आरूढ होनेसे वह वृषभवाहन कहा गया है, ऐसे आध्यात्मिक-महादेवको जो तत्त्वदर्शी-विद्वान् हैं-वे ही जानते हैं।

प्रश्न—भगवान् शंकरका भक्तलोग जलादिसे अभिषेक क्यों करते हैं, क्योंकि—

'गंगातरंगावलिभिः सुधांशोः, सुधाझरैश्चानिशमार्द्रमूर्ध्नः।
वृथाऽभिषेकं कलयन्ति शम्भोस्तृप्ताय तोयस्य ददत्यपः के ?॥

अर्थात् जिसका मस्तक सर्वदा श्रीगंगाजीके तरंगों की पंक्तियोंसे एवं सुधांशु-चन्द्रमाके अमृतमय-झरनोंसे सदा आर्द्र (गीला) बना रहता है, उस शंभुके मस्तकपर भक्तलोग व्यर्थ ही अभिषेक करते हैं, जलकी तृप्तिके लिए कोई भी जल-प्रदान करते हैं क्या ?, नहीं करते।

उत्तर—'ज्वलनाकलनाद् विषस्य पानाद्,
विषभाजां वहनाच्च तप्तमूर्तेः।

अनिशं त्रिदशापगाधरस्या-
प्यभिषेकप्रियता शिवस्य जाता ॥

अर्थात् ललाटमें अग्नि-ज्वाला धारण करनेसे, विषपान करनेसे एवं विषधरसर्पोंको धारण करनेसे भगवान् शंकरका विग्रह सदा तप्त-गरम रहा करता है, इसलिये गंगाधर होने पर भी श्रीशिवको अभिषेक-प्रिय होगया है।

इसप्रकारके आनन्द-प्रद प्रश्नोत्तरोंको सुनकर समीपमें बैठे हुए-सन्त एवं भक्तगण बड़े सन्तुष्ट हुए एवं धन्य-धन्य बोलने लगे।

## काश्मीर—अमरनाथकी यात्रा ।

जिस समय हम पूज्य-बड़े महाराज (ब्रह्मलीन महामण्डलेश्वर स्वामी जयेन्द्रपुरी जी)की शुभाज्ञासे धर्म-प्रचारके लिए यू.पी. (उ.प्र.) एवं पंजाबमें घूम रहे थे। आगरासे हम सब पंजाब गये थे। पंजाबके फगवाडा नामके एक नगर में ठहरे थे। साथमें ३०-४० महात्माओं की मण्डली जूट गई थी। दशनाम-परमहंस संन्यासी सम्प्रदाय द्वारा विधिवत् मण्डलेश्वरत्वकी नियुक्तिके विना ही मैं जबरन् मण्डलेश्वर बन गया था। प्रतिदिन प्रातः साथके महात्माओं को बृहदारण्यकोपनिषद्-भाष्य शारीरक-भाष्य-भामती-कल्पतरु अद्वैतसिद्धि आदि वेदान्तके ग्रन्थोंका स्वाध्याय कराता था, एवं सायं जन-साधारणके लिए प्रवचन करता था। एक रोज एक-दो यात्रा प्रेमी महात्माओंने काश्मीर-अमरनाथकी बात छेड़दी, उसके बड़े बड़े बखान किये और कहा कि-उसकी यात्रा आपको अवश्य करनी चाहिये। मैंने हँसकर कहा कि-द्रव्यादिके प्रबन्ध विना इतने समुदायकी यात्राका कैसे संभव हो सकता है? तब उस एक महात्माने कहा कि—आप अमरनाथकी यात्राका संकल्प करलो, तुरन्त सब प्रबन्ध हो जायगा। आप ही तो वेदान्तमें पढ़ाते हैं-कि-यह समग्र सृष्टि ही संकल्पमयी है, श्रीभगवान् के संकल्प-मात्रसे ही इसका प्रादुर्भाव हुआ है। तब आप महापुरुषके पुनीत-शुभ--संकल्प

मात्रसे यात्राकी सिद्धि क्यों नहीं होगी ?। उस समय हमने उपेक्षाका-सा भाव रखकर यों ही कह दिया कि-अच्छा हम संकल्प करते हैं, देखते हैं—संकल्पमात्रसे यात्राकी सिद्धि कैसे होती है ?।

अब तो उस महात्माने सर्वत्र इस बातको फैला दिया कि-श्रीस्वामीजी महाराजने अमरनाथ-यात्राका शुभ-संकल्प कर लिया है, स्वामीजी इन सब महात्माओंके साथ काश्मीर-अमरनाथकी यात्रा अवश्य करेंगे। फगवाड़े के कुछ भक्त-गण भी पूछने लगे-क्यों महाराज ! आपने ऐसा संकल्प किया है, हमने कहा कि-एक महात्माके कहनेसे कर लिया है। अब हम इसकी सफलताकी या विफलताकी परीक्षा करना चाहते हैं। अब भक्त-जन भी इसकी सफलताके लिए यथाशक्ति एवं यथायोग्य यात्रा-प्रबन्धके लिए जूट गये। आगराके रामचन्द्र कलकत्ते वाले सेठको भी इस बातका पता चला, तब उसने भी पत्र द्वारा-सूचित किया कि—मैं भी आपके साथ काश्मीर-अमरनाथकी यात्राके लिए अवश्य आऊँगा, और यथाशक्ति-महात्माओंकी सेवाका लाभ उठाऊंगा। वह सेठ सेवाभावी था, उसने प्रथम भी आगरामें अपने विशाल बगीचे में महात्माओंको ठहराकर सेवाका लाभ लिया था। अब तो सब सन्तोंको भी निश्चय हो गया कि-इतना बड़ा सेठ साथ में आता है-इसलिये यात्रामें किसी भी प्रकारकी त्रूटिका अनुभव नहीं होगा। यात्रा निर्विघ्न-सफल सिद्ध हो ही जायगी।

परन्तु यात्रा प्रस्थानके दो रोज आगे ही उसका तार आया कि-मैं यात्रामें नहीं आ सकता हूँ, क्योंकि-मेरी विवाहिता-नवयुवती लड़कीका देहान्त होगया है। तारका समाचार सुन कर कई सन्तोंकी आशाएँ निराशामें बदल गईं। और कुछ सन्त कहने लगे कि-अब यात्रा कैसे होगी ?। हमने दृढ़तासे कहा कि-अब धनुषसे बाण छूट गया है, वह वापस लौट नहीं सकता। उसप्रकार यात्राका दृढ़ निश्चय सर्वत्र फैल गया है, अब वह बदल नहीं सकता। चाहे कुछ भी हो, कितने भी संकट सामने क्यों न उपस्थित हों ? उनका वीरों की भांति

मुकाबला करना ही होगा, प्रसन्नतासे एवं शान्तिसे उनको सहन करना ही पड़ेगा। अब कायर नहीं होना होगा।

"क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप !।" (गी० २।३)

इस श्रीभगवान्‌की अभयवाणीके अनुसार हृदयकी क्षुद्र-दुर्बलताका परित्याग कर यात्राके लिए खड़ा हो जाना होगा और आगे ही बढ़ना होगा। श्रीराजर्षि-भर्तृहरिने कहा है कि—

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः,<br>
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।<br>
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः,<br>
प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति ॥'

अर्थात् हीनजन विघ्नोंके भयसे किसी कार्यको शुरु ही नहीं करते, और मध्यम-श्रेणीके लोग शुरु करके भी विघ्नोंसे विचलित होकर रुक जाते हैं। परन्तु विघ्नोंके द्वारा बार-बार विचलित किये जानेपर भी उत्तम-पुरुष, किसी कार्यको शुरु करके उसे पूर्ण किये विना नहीं छोड़ते।

## निश्चय-बलकी सिद्धि।

निश्चयके अनुसार हम सब फगवाड़ासे लाहौर गये। वहाँ श्री ईश्वरदेवीने महात्माओंके दो रोजके निवासके लिए आगेसे ही प्रबन्ध कर रक्खा था। हमने अपने सेक्रेटरी—स्वामी-श्यामानन्दजीसे कहाकि-काश्मीर-पहल-गाम तक जानेके लिए मोटरोंका प्रबन्ध करो, कंपनी वालोंको जाने-आनेका किराया—प्रथमसे ही दे दो। उनसे पावती ले लो। ताकि—वहाँसे वापस आनेमें कठिनाई न पड़े। दो बस मोटरोंका—जिनमें करीब ५० महात्मा बैठ सकते हैं—प्रबन्ध करनेके बाद स्वामी श्यामानन्दजीने बताया कि—अब मेरे समीप सिर्फ २७) रुपिये ही परिशिष्ट रह गये हैं। इतने मात्रसे इतने समुदायकी अमरनाथ-यात्रा कैसे होगी ? ऐसी चिन्ता अभिव्यक्त करते हुए कहा। हमने कहा कि-भगवान्—सदाशिव अमरनाथ-महादेवका ही दृढ़तम विश्वास रक्खो,

उस दयानिधि-भक्त-वत्सल श्रीशंकरकी अविचल-शरणागति धारण करो। और इस प्रकारकी भावना रक्खो कि-

शरणं तरुणेन्दुशेखरः, शरणं मे गिरिराजकन्यका ।
शरणं पुनरेव तावुभौ, शरणं नान्यदुपैमि दैवतम् ॥

अर्थात् तरुणेन्दु-शेखर यानी बालचन्द्र जिसके मस्तकमें सुशोभित हो रहा है-ऐसे आशुतोष-औढरदानी भगवान् श्रीशंकर; मेरी शरण है, तथा गिरिराज-हिमाचलकी कन्या भगवती-अन्नपूर्णा-उमागौरी-देवी मेरी शरण है। बार बार उन दोनों-पार्वती-परमेश्वरकी ही मैं दृढ़-श्रद्धा के साथ शरण ग्रहण करता हूँ। अन्य किसी देवकी शरण मैं नहीं ग्रहण करता। (शिव भक्त-उपमन्यु-महर्षिके ये पावन उद्गार हैं)।

भगवान् जैसा इष्ट या अनिष्ट, चाहें, वैसा करें, उनकी इच्छामें ही हमें आनन्द-प्रसन्न रहना चाहिये। अपनी पृथक्-इच्छा रखकर उद्विग्न होना-अच्छा नहीं, भगवान्के विश्वासकी यह एक प्रकारकी अवहेलना ही मानी जायगी। अतः 'तुम्हरी-इच्छामें प्रभो! है मेरा कल्याण' का निश्चय रखकर सदा उस सर्व-समर्थ-प्रभुके पावननामों का जप किया करो, एवं हृदयमें उस भगवान्के दिव्य-स्वरूपका अनुसंधान बनाये रक्खो। किसी बातकी परवाह मत करो। मस्त रहो, निःस्पृहता ही हमारा प्रशस्त धन है। आखिर तो हम फक्कड़-बाबा जी ही तो हैं, कोई बम्बईके अमीर-सेठ तो हैं नहीं। अपने को क्यों व्यर्थकी चिन्ता करनी चाहिये ?। जब तक-निभा, निभाया, जब तक गाड़ी चली, चलायी, नहीं तो जय जय सीताराम। लेना एक न देना दो। मस्त निर्द्वन्द्व एवं आनन्द-प्रसन्न ही रहना चाहिए।

शास्त्रोंमें कहा है कि—

भोजनाच्छादने चिन्तां वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः (शांभवाः) ।
योऽसौ विश्वंभरो देवः, स भक्तान् किमुपेक्षते ? ॥

अर्थात्-शिव-विष्णुके भक्त-भोजन एवं वस्त्रकी व्यर्थकी चिन्ता क्यों करते हैं ? चिन्ता नहीं ही करनी चाहिये, क्योंकि-जो विश्वंभर-समग्र-विश्वका अनवरत-भरण-पोषण करने वाला देव है-वह क्या भक्तों की उपेक्षा करता है ? नहीं। भक्तोंका योग-क्षेम वह बराबर चलाता ही आरहा है। 'योगक्षेमं वहाम्यहम्' (गी०९।२२) यह श्री भगवान् का गीतामें पावन-दृढ़ आश्वासन है । परन्तु हमें अनन्य-प्रेमसे उस सर्वात्मा भगवान् का सर्वदा चिन्तन करते रहना चाहिये । अतः सुन्दरदासजी ने यह क्या ही अच्छा कहा है कि-

'दांत न थे, तब दूध दियो, अब दांत दिये तो क्या अन्न न दै हैं ?
जीव बसें, जलमें--थलमें, सबकी सुधि लेह सो तेरी भी लै हैं ।
काहे को सोच करे मन-मूरख ? सोच करे कछु हाथ न ऐ हैं,
जानको देत, अजानको देत, जहानको देत, सो तोकुं न दै हैं ?।।

इसलिए—

'का चिन्ता मम जीवने ? यदि हरि-विश्वंभरो गीयते,
नो चेदर्भक--जीवनाय जननी-स्तन्यं कथं निःसरेत् ? ।
इत्यालोच्य मुहुर्मुहु र्यदुपते ! लक्ष्मीपते ! केवलम्,
त्वत्पादाम्बुज--चिन्तनेन सततं कालो मया नीयते ।।

अर्थात् यदि श्रीहरि विश्वंभररूपसे शास्त्रों में कहा गया है तो मुझे जीवनके लिए क्यों चिन्ता करनी चाहिये ? । यदि श्रीहरि विश्वंभर न हो तो-बालकके जीवनके लिए जननीके स्तनों से दूधका निःसरण-उस समय ही-आगे पीछे नहीं-क्यों होता है ? इसलिए निश्चय होता है-कि श्रीहरि विश्वंभर ही है—इसलिए ही उसने जब कि-छोटा सा शिशु अन्नादि नहीं खा सकता है—उस समय उसके जीवनके लिए दूध से लबालब भरे हुए दो सुन्दर-सरोवर आगे से ही तैयार कर रखता है। ऐसा निश्चय करके अब—हे यदुपते ! श्रीकृष्ण ! हे लक्ष्मीपते ! श्री

नारायण ! केवल आपके पावन–चरण–कमलोंका निरन्तर चिन्तन करता हुआ ही मैं अपना अमूल्य समय–व्यतीत करता हूँ।

इतना लम्बा चौड़ा प्रवचन सुनकर सब महात्मा प्रसन्न होगये, उसके बाद भिक्षाकी हरिहर हुई। भिक्षा करके आराम करने वाले ही थे कि—आगरा का वह सेठ रामचन्द्र अपने मुनीम के साथ फलका करण्डिया तथा माला लेकर प्रसन्नताके साथ 'ॐ नमो नारायणाय ॐ नमो नारायणाय' कहता हुआ सामने उपस्थित हो गया। उसे देखकर प्रसन्नतासे हमने कहा—अच्छा ! आ गया सेठ ! नहीं आने वाला था, कैसे आ गया ? तब उसने प्रेमसे माला पहिनाकर—सामने फलों का ढेर लगाकर—सो रुपियों की नोटें भेट रखकर प्रणामकर हाथ जोड़कर वह कहने लगा कि—भगवन् ! मैं तो नहीं ही आने वाला था—परन्तु भगवान् शंकरने ही जबरदस्तीसे आवाज देकर मुझे यहां आपके साथ यात्राके लिए भेजा है।

कल ही मैं प्रातः काल अपने बगीचेके भीतर वर्तमान भगवान् शंकरके मन्दिरमें जल चढाकर जब पंचाक्षर 'ॐनमः शिवाय' महा-मन्त्रसे बिल्वपत्र चढा रहा था–तब मुझे ऐसी ध्वनि क्रमशः तीन वार सुनाई दी कि–तू स्वामीजी के साथ अमरनाथकी यात्रा कर। यहाँ से जल्दी ही जा। प्रथमकी ध्वनि सुनकर मैं इधर–उधर देखने लगा कि–ऐसा कौन बोलता है ? परन्तु वहां मंदिरमें और कोई तो था नहीं ? और वह ध्वनि मन्दिरके भीतरके गुम्बजसे ही आरही थी, द्वितीय वार एवं तृतीय–वार के स्पष्ट श्रवणसे मुझे निश्चय होगया कि—यह श्रीभगवान् महादेव ही बोल रहे हैं—भगवान्-शंकर का ही यह दिव्य–आदेश है।

तुरन्त ही मैंने यात्रा का दृढ निश्चय कर लिया, और भावाविष्ट हुआ पावन–प्रसन्नताका अनुभव करता हुआ–अपने घरमें गया, और सेठानी से कहा–कि–मैं स्वामीजी के साथ अमरनाथकी यात्राके लिए जा रहा हूँ–मृत–लडकीके लिए जो कुछ करना धरना हो–रोना

धोना हो-सब कुछ तू करती रहना। मैं तो तीन बजे की गाड़ी पकड़कर अभी ही पंजाबकी तरफ जा रहा हूँ-महादेव-भगवान् की यही आज्ञा है। उसकी आज्ञाका मैं उल्लंघन नहीं कर सकता। सेठानी आश्चर्य-मुग्ध-सी हुई देखती ही रही, और कुछ कहने का उपक्रम-सा करती हुई भी मैं उसकी उपेक्षा कर अपनी दुकानकी तरफ आगे बढ गया। और गाड़ी के द्वारा यहां लाहोरमें आकर आप पूज्य-चरणके समक्ष उपस्थित हो गया।

### भक्तवत्सल-कृपालु-श्रीशंकरकी स्तुति।

उस समय विश्वनाथ-भगवान् की दयालुताका एवं भक्तवत्स-लताका प्रत्यक्ष अनुभव होनेपर हमारे भी नेत्रोंमें प्रेमके एवं आनन्दके अश्रु भर गये। जिह्वासे सहसा ये शब्द निकल गये कि—

जय गौरीपते ! शम्भो ! जय चन्द्रार्धशेखर !।
जय नाथ ! कृपासिन्धो ! जय भक्तार्तिभञ्जन !॥

हे शर्व ! हे शंकर ! हे पुरारे !, हे कृष्ण ! हे केशव ! हे मुरारे !।
हे दीनबन्धो ! करुणैकसिन्धो ! मां पाहि नित्यं भगवन् ! नमस्ते ॥

उस समय वहां बहुत ही महात्मागण एवं भक्त-गण उपस्थित हो गये थे। उन्हें देखकर काश्मीरके परम शिवभक्त-जगद्धर भट्ट-प्रणीत-स्तुति-कुसुमाञ्जलि-ग्रन्थके शिव-महिमा एवं शिवस्तुति परक श्लोक सुनाने की अभिलाषा होगई। वहाँ श्रद्धा-पूर्ण हृदयसे सुनाये गये श्लोक ये थे—

जय जितामय ! जय सुधामय ! जय धृतामृत-दीधिते !,
जय हतान्धक ! जय पुरान्तक ! जय कृतान्तक-संहृते !।
जय परात्पर ! जय दयापर ! जय नतार्पित-सद्गते !,
जय जितस्मर ! जय महेश्वर ! जय जय त्रिजगत्पते !॥

(स्तु० कु० १५-३७)

हे सकल-व्याधियोंको जीतनेवाले वैद्यनाथ-सदाशिव ! आपकी जय हो। हे अमृतमय-आनन्दमय-स्वभाववाले शंकर ! आपकी जय हो। हे जटा-मुकुटमें चन्द्रमाको धारण करने वाले-प्रभो ! आपकी जय हो। हे अन्धकासुरको मारने वाले शंभो ! आपकी सदा जय हो। हे त्रिपुरासुरके नाश करने वाले महादेव ! आपकी जय हो। हे कालका संहार करने वाले महाकालेश्वर ! आपकी जय हो। हे पर-कारणरूप एवं अपर कार्यरूप-चराचर-विश्वात्मन् विभो ! आपकी जय हो। हे दयाके सागर ! आपकी जय हो। हे विनम्र-भक्तजनों को सद्‌गति देने वाले-भक्त कल्पतरो-भगवन् ! आपकी जय हो। हे कामको जीतने वाले जगद्-गुरो ! आपकी जय हो। हे महेश्वर ! विश्वेश्वर ! आपकी जय हो। और हे त्रिलोकीके स्वामी—विश्वनाथ—अमरनाथ ! आपकी बारंबार जय हो जय हो।

अम्बिकापति-भगवान्-श्रीशंकरकी करुणा अमोघ एवं महिमाशालिनी है, उसकी कविने-अच्छे-लच्छेदार-वाक्योंके द्वारा क्या ही बढिया-प्रशंसा की है कि—

'करुणा तव शस्यते यया, जितकामोऽपि भवान् वशीकृतः।
इदमन्यदियं यदम्बिका----मपि देवीमनयद् विधेयताम् ॥
जगदम्बुभुवा भुवाऽम्भसा, सितभासा नभसा नभस्वता।
धृतमुष्णरुचाऽऽत्मना च यत् करुणाया महिमा तवेश ! सः ॥
अहत----प्रसरां प्रसादिनीं, सहसाऽपोहित----ताप----संपदम्।
शरणं करुणातरङ्गिणीं, प्रतिपद्ये तव देव ! पावनीम् ॥

(स्तु० कु० १५।१०-११-१२)

अर्थात् हे प्रभो ! हमतो आपकी उस करुणा (कृपा) की ही प्रशंसा करते हैं, जिसने कि—आप जितकाम यानी कामदेवका विजय करने वाले-जितेन्द्रिय-सर्वसमर्थ-भगवान् को भी अपने वशमें कर लिया है। और हे नाथ ! एक बात यह और भी आश्चर्य की है कि-इस

महिमाशालिनी-करुणा ने-केवल एक-आपको ही वशमें कर रक्खा है, यह बात नहीं, किन्तु आपकी प्राणेश्वरी-जगज्जननी-भगवती महादेवी उमागौरी को भी अपने वशमें कर रक्खा है। हे ईश ! स्वेच्छासे निर्मित-इस विविध-प्राणी-समुदाय रूप-जंगम-जगत् की रक्षाके लिये ही आपने (१) अग्नि (२) पृथिवी (३) जल (४) चन्द्रमा (५) आकाश (६) वायु (७) सूर्य और (८) आत्मारूप अष्ट-मूर्तियोंके द्वारा त्रैलोक्य को धारण किया है, यह सब महिमा भी तो आपकी करुणा की ही है। हे देव ! अप्रतिहत-शक्तिसे संपन्न-आनन्दोल्लाससे परिपूर्ण-और समस्त-संतापों को शीघ्र समूल-नष्ट करने वाली आपकी पतित-पावनी-शरणागतकी रक्षा करने वाली-करुणातरङ्गिणी (कृपारूपिणी-गंगा) की मैं शरण लेता हूँ।

'वपुः—खण्डे खण्डः प्रतिवसति शैलेन्द्रदुहितुः,
शिखण्डे खण्डेन्दुः स्वयमपि विभुः खण्डपरशुः।
तथापि प्रत्यग्रं शरण—मुपयातं प्रति विभोः,
अखण्डो व्यापारो जगति करुणाया विजयते ॥,

(स्तु. कु. १५-३७)

भगवान् श्रीशंकरके दिव्य-विग्रहके एक खण्डमें अर्थात् वाम-भागमें श्रीगिरिजा-भवानीका खंण्ड (अर्धभाग) रहता है, मुकुटमें खण्डेन्दु (चन्द्रमा का खण्ड अर्थात् अर्धचन्द्र) निवास करता है, और स्वयं भी प्रभु खण्डपरशु ( आधे परशुको धारण करने वाले) हैं, तथापि (इस प्रकार सब तरफसे खण्डता होने पर भी ) नवीन-शरणागतके प्रति प्रभुकी करुणाका जगत्में अखण्ड-व्यापार बना रहता है, अर्थात् उस महनीय-करुणाके व्यापारमें कभी खण्डता-प्रतिरुद्धता नहीं होती, उसका विजय हो।

भगवान् विश्वेश्वर-दयानिधि-प्रभुके पावन-नामोंकी दृढ़-विश्वास-मयी भक्ति तथा भगवान् के साकार एवं निराकार-उभय-स्वरूपकी

आनन्दमयी- अमृतमयी-भक्ति ही मानवोंके सभी अनिष्टोंका निवारणकर समस्त-अभीष्टोंको प्रदान करती है। इसलिये भक्त-कविने भक्तिकी महिमाका वर्णन करते हुए कहा है कि—

'नाथ ! ज्योत्स्ना बहुलरजनौ कार्तिकीयेव कांता,
कांतारांतर्मथित—पथिक—प्रौढतापा प्रपेव ।
मा मा भैषीरिति यमभये तावकीनेव वाणी,
भावत्की मे सततममृतस्यन्दिनी भाति भक्तिः ॥

(स्तु० कु० १७-७)

हे नाथ ! सांसारिक-पाप-तापोंसे सन्तप्त हृदयमें निरन्तर-अमृतकी-सी-आनन्दमयी वृष्टि करने वाली-आपकी पावन-भक्ति, मुझे-कृष्ण-पक्षकी अँधियारी-रात्रिमें कार्त्तिक मासके शारदीय मनोहर-पूर्ण चन्द्र-की शीतल-आह्लादकचांदनीके समान, जल विहीन अरण्यके मार्गमें श्रान्त हुए-पथिकोंकी महती पिपासा-को शान्त करने वाली प्रपा (जल-शाला) के समान, और अत्यन्त-कुपित-यमराजका भय उपस्थित होनेपर आपकी 'मा भैषी' 'अरे वत्स ! मार्कण्डेय ! तू इस यमराजसे मत डरना-कदापि मत डरना इसप्रकारकी अभयवाणीके समान-अतीव प्रिय लगती है।

'कामः कामं धनु---रनुनिशं कौसुमं संवृणोतु,
व्यालं कालः स्वकरकुहरे भग्नभोगं विधत्ताम् ।
भार्गी भक्तिः सपदि सकल--प्रार्थना----कल्पवल्ली
लब्धा दृब्धा जगति कति न क्लेशपाशा हताशा ॥'

(स्तु० कु० १७।१४)

अहा ! मुझे भगवान्की एवं गुरुकी कृपासे सकल-अभिलाषाओंकी पूर्ति करने वाली-कल्पलतारूपा-भर्ग-स्वरूप-भगवान् श्रीशंकर की विमल-भक्ति प्राप्त होगई है। इसलिये अब वह कामदेव, हताश होकर अपने मोहक-पुष्प-धनुषको कहीं छिपाके रक्खे, और कालरूप

मृत्यु भी उद्वेजक-नागपाशको अपने हाथोंमें ही गुप्त रक्खे- अर्थात् उस काम एवं कालका मुक्त-शिवभक्त पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता । अब मैंने अविद्यादि-समस्त क्लेश-पाशोंको हताश करके उन्हें निरुद्ध कर डाला है, अर्थात् रागद्वेषादि-समस्त दोषोंको मैंने श्रीशिव भक्तिके प्रतापसे मन्त्र-मथित-सर्पके समान निर्वीर्य करके नष्ट-सा कर दिया हैं ।

'कान्तैकांतव्यसनमनसां वल्कलालङ्कृतानाम्,
ज्ञानाम्भोभिः क्षपितरजसां जाह्नवीतीरभाजाम् ।
गाढोत्सेक-----प्रकटित----जटामण्डली---मण्डनानां,
नानाकारा भवति कृतिनां मुक्तये भर्गभक्तिः ॥'

(स्तु० कु० १७-१६)

अतीव मनोहर-एकान्तके प्रेमी, वल्कल-वस्त्रोंसे अलंकृत, ज्ञान रूपी सतत बहनेवाली-विमल-जल धाराओंसे पाप-ताप रूपी-रजः का प्रक्षालन करने वाले-जाह्नवी-गंगाके पावन-तटका सेवन करने वाले-और गाढ-भक्तिरसके सेचनसे प्रकटित—'अभयं सत्त्वसंशुद्धि ज्ञानयोग-व्यवस्थितिः ।' (गी० १६।१) आदि दैवी-संपद्-रूपा, जटा-मण्डलीसे समलंकृत-पुण्यात्माओं को वह पूजारूपा-स्तुतिरूपा, जपरूपा, ध्यानरूपा आदि अनेकों प्रकारकी महनीया शिव-भक्ति कैवल्य-मोक्ष पदवीको प्रदान करती है ।

भगवान् श्रीशंकर कैसे हैं ? भक्त-कवि भगवान् की महत्ता का वर्णन करता हुआ कहता है कि—

'अनाथानां नाथो गतिरगतिकानां व्यसनिनां,
विनेता भीतानां शरणमधृतीनां भरवशः ।
सुहृद्-बन्धुः स्वामी शरणमुपकारी वर-गुरुः,
पिता माता भ्राता त्रिजगति जयत्यन्तकरिपुः ॥,

(स्तु० कु० ३५-१)

भगवान् सदाशिव अनाथोंका नाथ है, गति–रहितों का गतिरूप है; स्त्री, द्यूत, मृगया, आदि दुर्व्यसन--रत–जनोंके विनेता अर्थात् उन दुर्जनोंकी भी दुर्जनता निवारणकर उनमें सज्जनता स्थापन करने वाला–विनय (प्रेम–सद्–भाव) प्रदान करने वाला है, भय–भीतोंको आश्रय देकर निर्भय बनाने वाला, धैर्य रहित–जनोंको धैर्य एवं आश्वासन देनेवाला, सुहृद् है, बन्धु है, स्वामी है, शरणरूप है, उपकारी है, हितोपदेष्टा–श्रेष्ठ गुरु है–पिता है, माता है, एवं भ्राता है, ऐसा मृत्युञ्जय--विश्वेश्वर श्रीशंकर त्रिलोकीमें सदा विजयी है, अर्थात् सर्वोत्कृष्टरूपसे वर्तमान है।

भगवान् शंकरकी उपासना करनेवाला–महापुरुष कैसा होता है ? भक्त--कवि कहता है कि–

'सद्—विद्याभ्यसनः सभानिवसनः सौधासनाध्यासनः,
शुद्धान्नग्रसनः सुधौतवसनः सत्साध्वसध्वंसनः ।
साह्लादोल्लसनः प्रसन्नहसनः संपन्नसद्वासनः,
सत्काव्यव्यसनः सुधार्द्ररसनः शंभोः कृतोपासनः ॥'

(स्तु० कु० ३३।६)

भगवान्–शंकरकी उपासना करनेवाला–सद्–ब्रह्मविद्या का अभ्यासी होता है, धर्मनिष्ठ–सज्जनोंकी सभामें उपदेशकरूपसे अवस्थित रहता है, अत्युत्तम–पवित्र–आश्रममें निवास करता है, विशुद्ध–अन्नका भोजन करता है, निर्मल–वस्त्रोंका परिधान करता है, सदुपदेश द्वारा सज्जनोंके भयको भगाकर उन्हें निर्भय बनाता है, हर्षके उल्लाससे भरपूर रहता है, प्रसन्न हास्य–वाला होता है, अच्छी वासनाओंसे संपन्न होता है–अच्छे--शास्त्रोंके निर्माण करने का व्यसनी होता है, एवं जिसकी जिह्वामें अमृतके समान मधुर–प्रियवाणी रहती है।

इस प्रकार स्तुति--कुसुमाञ्जलि–ग्रन्थके पूर्वोक्त–अनेक श्लोकोंका

विवेचन सुनकर सभी महात्मा लोग एवं भक्तलोग अतीव संतुष्ट एवं प्रसन्न हो गये।

## मोटर-दुर्घटना।

दूसरे रोज प्रातः हम सब दो-बस-मोटरों द्वारा काश्मीर-अमरनाथकी यात्राके लिए लाहोरसे चल पड़े। मोटरमें महात्माओंका श्रद्धा एवं एकाग्रता पूर्वक-संमिलितरूपसे भगवन्नाम-संकीर्तन सतत चालु रहा। जम्बु नगरमें पहुँचकर वहाँके अनेकों-भव्य-मन्दिरोंके दर्शन किये। जम्बु मन्दिरोंका नगररूपसे प्रसिद्ध है। मध्याह्न होने पर वहाँके एक प्रसिद्ध-विशाल शिव-मन्दिरमें हम सब ठहर गये। साथके ब्राह्मण-भण्डारियोंने पूरी-रोटी दाल-भात आदिका भोजन बनाया। भोजनके बाद कुछ आराम करके हम सब मोटरमें सवार हुए, उस समय-मोटरों के ऊपर ड्राइवरोंने हमारे विस्त्रोंके ऊपर भी कुछ ज्यादा सामान किराया के लोभसे लाद दिया था। हमने कहा—यह सामान क्यों लादा? हमारी मोटरें-हमारे लिए ही सिर्फ रिजर्व हैं-अतः इसमें न कोई-अन्य बैठ सकता है-न तो अन्य सामान ही लादा जा सकता है। तब उन्होंने कुछ दीनता-सी प्रकट करते हुए कहा कि-भगवन्! इसमें आपका क्या जाता हैं? हमें कुछ लाभ मिल जाता है, इसलिये आप इसमें आपत्ति मत करें। उस समय हमारे मुखसे ये शब्द सहसा निकल पड़े कि-अरे! ऊपर इतना बोझा लादने पर कहीं मोटर तुम्हारी गिर न पड़े। इतना कहकर ड्राइवरके समीपकी आगेकी सीट पर हम बैठ गये। मोटरमें बड़े प्रेमसे-एकाग्रतासे भगवान्की पावन-नामावलियों का संकीर्तन होरहा था। जम्बुसे करीब नव-मील पहुंचनेपर-सामनेसे एक मोटर आ रही थी-इसलिये ड्राइवरने हमारी मोटरको कुछ साईड पर करने-पर रेतीमें उसके पहिये दब गये, और सहसा वह खड्डे में गिर पड़ी। उस समय-बड़े जोरोंसे—

"ॐ हरि ॐ हरि, हरि हरि ॐ,
ॐ हरि ॐ हरि हरि हरि ॐ।

—की प्रेममयी—आनन्दमयी—संकीर्तन ध्वनि हो रही थी। और अकस्मात् ही महात्माओं ने देखा कि—ॐ हरि ध्वनिके साथ ही हमारी मोटरके पहिये ऊपर होगये हैं, और हम सब टेढ़े-से हो गये हैं। काँचकी टक्करसे मेरे हाथमें भी तीन-चार गहरे घाव हो गये, परन्तु जब हाथसे बहता हुआ खुन दिखाई पड़ा, तब उसके घावोंकी वेदना का पता चला। इस प्रकार सभी महात्माओं के—किसीके शिरमें तो किसीकी कमरमें, किसीकी पीठमें अनेक-स्थलोंपर चोटें लगीं। बड़ी मुश्किलीसे हम लोग मोटरसे बाहर निकले। दूसरी मोटर सुरक्षित थी, इसलिये उसमें स्थित-महात्माओंने भी मोटरसे निकालनेमें बड़ी सहायता दी। जहाँ-जहाँ चोटें लगीं थीं, वहां-वहां पेट्रोल डालकर कपड़े की पट्टियां बाँध दी गयीं। हमारी गिरी हुई-मोटरमें वह आगरा का सेठ भी अपने मुनीमके साथ बैठा था। परन्तु उसको एवं मुनीमको कुछ भी चोट नहीं आई। तथापि वह घभरा गया था, कहने लगा कि—अब वापस चलना चाहिये। हमने कहा—तुमतो सुरक्षित हो—तुम मत घभराओ, आगे बढ़े हुए-कदमोंको हम पीछे हटाना नहीं जानते। अतः धैर्य-रक्खो, भगवान्-सदाशिव जो करता है, वह अच्छा ही करता है, ऐसा विश्वास रक्खो। एक घण्टेके बाद किसी अन्य मोटरकी सहायता से उस गिरी हुई मोटरको खड़ी किया। और हम लोग पुनः उसमें ही बैठकर आगे चले, उस समय रात्रि हो गई थी, करीब आठ बजनेका समय होगा।

मोटरमें बैठकर-इन चोटोंकी वेदनाओंके साथ ही महात्माओंने उसी ही "ॐ हरि ॐ हरि" का संकीर्तन शुरु कर दिया। पहाड़ोंके टेढे-मेढे-ऊँचे नीचे मार्गोंसे पसार होती हुई-हमारी मोटरें रात्रिमें ११॥ बजे उधमपुर पहुंचीं। और एक विश्रामालयमें हम ठहर गये, उस समय डाक्टरको बुलाया गया, उसने सबकी मल्लम पट्टी की। अन्तमें मेरी बारी आई। सबसे ज्यादा घाव मेरे हाथोंमें लगे हुए थे। क्योंकि—सबका अग्रणी बनकर महन्ती-गौरवके साथ अकड़कर सबसे आगे मैं ही तो

बैठा था ।'मुखरस्तत्र हन्यते' के अनुसार सबकी अपेक्षा मुझे ज्यादा डबल-प्रसादी मिलनी ही चाहिये थी । खून बंद ही नहीं होता था-तब डाक्टरने घोड़ेके बालोंसे सीकर-दवा लगाकर पट्टी बाँध दी । उस समय 'नाहं देहो न मे देहः' अर्थात् मैं देह नहीं, और मेरा देह नहीं--की भावनाके साथ'चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहं' की विमल—भावनाने ही वेदनाको मधुर बना दिया था ।

प्रातः आगे चलने की तैयारीमें थे ही, उस समय थानेदार और पुलिस आगई । उस शिख-ड्राइवर को पकड़ा । हमें उसे छुड़ानेका प्रयत्न करना पड़ा । कहा—हमें कुछ भी इसकी शिकायत नहीं, यह निर्दोष है-इत्यादि अनेकों बातें बनानी पड़ीं—तब जाकर वह बड़ी मुश्किलसे छूट सका । अब हम आगे बढ़े, हिमालयके ऊँचे-ऊँचे पर्वतों की-पल्लवित-पुष्पित-विविध-वृक्ष-लताओंकी एवं हर-हर करते हुए निर्मल-जल प्रवाहित करने वाले झरनोंकी, मनोहर-अनुपम शोभा देखते हुए-और 'हरिहर बसा है हरियालियों में, वही झूमता है-- झुकी डालियोंमें' । 'पहाड़ोंमें नदियोंमें वृक्षोंके वनमें' जिधर नज़र डाली, उधर तू ही तू है । जहाँ नज़र जाये, तू ही नज़र आये, प्रत्येक वस्तुमें तू ही रुबरु है ।' इस प्रकार सर्वत्र अद्वय-ब्रह्म-भावके आनन्द-मय गीत गाते हुए दूसरे रोज हम सब सकुशल पहल—ग्राम पहुंच गये ।

## पहलग्राम ।

वहाँ पहुँचनेपर आगरावाले सेठने कहा—भगवन् ! एक मासके आगे मेरी मोटर-कारकी भी ऐसी दुर्घटना हो गई थी-एक गाडीवान् को भी बड़ी चोटें लगीं थीं, और उसमें हमें करीब दश हजारका नुकशान उठाना पडा था । संभव है-इस दुर्घटनामें भी कारणरूपसे मेरे ही कुछ जन्म-जन्मान्तरके प्रबल-पाप हों-जिनके दुःखरूप-फलको हमारे महात्माओंने थोड़ा-थोड़ा बाँट लिया, और अपने सेवक-भक्तको बचा लिया । अतः मेरी यह प्रार्थना है कि—अभीसे इस मण्डलका

जो भी कुछ खर्च हो—वह सब मैं ही दूँगा। और अमरनाथकी यात्राका सभी प्रबन्ध मेरी तरफसे ही होता रहेगा। उस सेठने कोठारीजी को भी बुलाकर विदित कर दिया कि—हमारे मुनीमसे ही सभी आवश्यक-व्यय-खर्च लिया करो।

अब लम्बोदरी–नदीके एकान्त शान्त-तट पर महात्माओंके लिये अनेक–तम्बू लग गये। कोठार–भण्डार–मन्दिर आदि सब कुछ तम्बूओंके भीतर ही बन गये, दूरसे आश्रम जैसा दृश्य दीखने लगा, भगवाँ झंडा लगा दिया गया। बड़े आनन्दके साथ पहलग्राममें रहने लगे। प्रातः स्वाध्याय होता था, सायं प्रश्नोत्तर होते थे एवं रात्रिमें आरती पूजा महिम्न कीर्तन आदि होते थे। काश्मीरके इस पहलग्रामका दृश्य बड़ा ही सुहावना था। चारों तरफ हरि–भरी मन–मोहक–पर्वतों की श्रेणियां एवं वहांके वृक्षों की उतार–चढाव युक्त–पंक्तियां छोटे–बड़े शिव-मन्दिरोंकी ही सहसा भावनाको हृदयमें उपस्थित कर देती थीं। सर्वत्र–प्रपञ्चोपशम–तुरीय–शान्त–आनन्दमय-सर्वात्मा-शिव ही शिव भासित होरहा है, तदन्य कहीं कुछ भी नहीं है, ऐसा भाव भर कर मनीराम बोल उठता था, कि—

'पाताले चान्तरिक्षे दश–दिशि गहने सप्तशैले समुद्रे,
भस्मे काष्ठे च लोष्टे क्षिति-जल-पवने स्थावरे जंगमे च।
अग्नौ खे पुंसि नार्यां असुर–सुरपुगे पुष्प—पत्रे तृणेऽग्रे,
एको व्यापी शिवोऽहमिति वदति हरिर्नास्ति देवो द्वितीयः॥

प्राच्यां दिशायां दिशि पश्चिमायां, दिश्युत्तरस्यां दिशि दक्षिणस्याम्।
ऊर्ध्वं ह्यधस्ताच्च तथैव तिर्यक्, अन्तर्बहिस्त्वं विभुरेक एव॥
त्वदात्मकं विश्वमिदं समस्तं, त्वत्तो विभिन्नं नहि किञ्चिदस्ति।
तव प्रसादेन तव स्वरूपं, विदन्ति ये ते सुखिनो भवन्ति॥

अर्थात्—नीचे–पातालमें, ऊपर–अन्तरिक्षमें, दशों दिशाओंमें,

गहन सप्त-शैल एवं समुद्रमें, भस्ममें, काष्ठमें, लोष्ट (पांसुपिण्ड)में, पृथिवीमें, जलमें, पवनमें, स्थावरमें, जंगममें, अग्निमें, आकाशमें, पुरुषमें, नारीमें, देव एवं असुरोंके समुदायमें, पुष्पोंमें, पत्तोंमें, तृणमें, वृक्षमें, सबमें एक ही व्यापक शिव है, और वह मैं ही हूँ, अन्य-दूसरा कोई देव नहीं है, ऐसा श्रीहरि कहता है। पूर्व-दिशामें, पश्चिमदिशामें, उत्तरदिशामें, दक्षिणदिशामें, ऊपर नीचे तिर्यक् तथा अन्दर एवं बाहर एक विभु (व्यापक) तू ही तू है। यह समस्त विश्व तेरा ही स्वरूप है, तेरेसे भिन्न कुछ भी नहीं है, तेरी कृपासे तेरे इस महान् स्वरूप को जो जानते हैं, वे सुखी हो जाते हैं।

## शंका—समाधान।

एक महात्माने शंका किया—कि-भगवन्! अपने तो मोटरमें पुण्यमय-भगवन्नामका प्रेमसे संकीर्तन करते हुए जा रहे थे-तब अपनी मोटर क्यों गिर गयी? और आपश्रीको एवं अन्यान्य-महात्माओं को क्यों चोटें लगीं?

हँसकर हमने कहा—ये जितने भी दृश्यमान शरीर हैं, वे सबके सब केवल पुण्यसे नहीं, एवं केवल पापसे भी नहीं किन्तु पुण्यपाप-दोनोंके न्यूनाधिक-योगसे निर्मित हुए हैं, इसलिये सभी शरीरोंको पुण्यपापके अनुसार उसके फलरूपसे सुख-दुःखकी प्राप्ति होनी ही चाहिये। और ये पुण्य-पाप जन्मान्तरके भी हो सकते हैं, एवं इस जन्मके भी हो सकते हैं। कहा है—

'अत्युग्र-पुण्यपापानामिहैव फलमश्नुते।'

अत्युग्र—पुण्य एवं पापोंका फल इस वर्तमान-शरीरमें भी भोगनेके लिए मिलता है। अतः हमारे अतिधन्य-वेदोंने कहा है कि—

'विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
संबाहुभ्यां धमति संपतत्रै-र्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥

(ऋ० १०।८१।३। शु. य. १७।१९। अथर्व० १३।२।२६)

इस मन्त्रको आप सब पुष्पाञ्जलिके समय प्रतिदिन बोलते हैं। इसका यह अर्थ है-वह अन्तरिक्ष एवं भूमिसे उपलक्षित-समस्त विश्व का उत्पादक-रचयिता देव-परमात्मा एक है-अनेक नहीं है, भले ही उसके अनेक नाम हों, एवं अनेक विविध-विग्रह हों, तथापि उसमें अनेकताकी प्रसक्ति नहीं हो सकती। अतएव वह कार्यरूप-विश्वका अभिन्न-निमित्त-उपादान कारणरूप हुआ-सर्वत्र वही हमें अनेकरूपोंसे दर्शन दे रहा है, असंख्य एवं विविध-प्राणियोंमें जितने भी चक्षु, मुख बाहु एवं पैर दीखाई दे रहे हैं-वे सबके सब उस एक परमेश्वरके ही हैं, इसलिए वह विश्वतश्चक्षुः, विश्वतोमुखः विश्वतोबाहुः एवं विश्वतस्पात् कहा जाता है, अर्थात् जो भी कुछ शरीररूप-कार्य एवं चक्षुरादि-इन्द्रियाँ रूपी करण, प्रतीत होते हैं—उन सबमें वही विश्वद्रष्टा सर्वात्मा ओत-प्रोत होकर सबका भासक एवं प्रेरक बना हुआ है। अतएव वही कर्मा-ध्यक्ष-भगवान् ही समस्त प्राणियोंके बाहु-स्थानीय-पुण्य पापके योगसे सम्यक् पतन-शील (परिणमन-शील) सुख दुःख-जनक-इष्टानिष्ट-पदार्थों का 'संधमति' यानी संयोग-वियोग करता रहता है। इसलिये श्री भगवान् ने गीतामें कहा है कि—

"दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः, सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनि—रुच्यते ॥

(गी० २।५६)

अर्थात्—पापके योगसे दुःख भी आते रहते ही हैं—परन्तु उनसे मनको उद्विग्न-संतप्त नहीं बनाना चाहिये। यद्यपि दुःख स्वभावसे उद्वेजक होते हैं; परन्तु विचारशील-साधक समझता है कि—दुःख-भोग से पापका ऋण-भारउतर जाता है। और दुःखानुभवसे संसारसे विरक्ति एवं ईश्वरानुरक्तिकी अभिवृद्धि होती है, इसलिये यह दुःख बड़ा उप-कारक है-इससे घभराना नहीं चाहिये, और संसारके ये दुःख एवं सुख सदाके लिए स्थायी रहते भी नहीं, धूप एवं छाया की भाँति आते-जाते

रहते हैं-इसलिये दुःखसे उद्विग्न नहीं होना चाहिये, और सुखोंकी स्पृहा नहीं रखनी चाहिये। सांसारिक-सुखोंकी स्पृहा रखने पर कदाचित् उनके न मिलने पर वही स्पृहा दुःखकी हेतु बन जाती है; और सुख मिलने पर वही स्पृहा तृष्णारूप बनकर मनुष्यको और भी ज्यादा दुःखी बना डालती है। भोग्य पदार्थ-उपस्थित होनेपर भी भोक्ता की अशक्ति-रोग आदि अनेक कारणोंसे वह तृष्णा उद्वेजक हो जाती है-इसलिये विवेक-विचार द्वारा तथा ईश्वर-भक्ति एवं ज्ञान द्वारा सांसारिक-सुखोंकी स्पृहाका भी परित्याग कर देना चाहिये। अतएव कहा है कि—

'सुख स्वप्ना, दुःख बुद्‌बुदा, दोनों ही मेहमान ।
दोनों में समता राखिये, जो भेजे भगवान ॥

अर्थात्—सांसारिक-सुख, स्वप्न जैसे देखते देखते ही सरक जाते हैं, सुखका समय शीघ्र ही समाप्त हो जाता है, और बुद्‌बुद्‌के समान दुःखके दिवस लम्बे हो जाते हैं-यह बात सब समझ सकते हैं—सिनेमा देखनेका समय शीघ्र समाप्त होता दीखता है, और टाईफाइड-ज्वरका समय शीघ्र समाप्त नहीं होता हुआ लम्बा-सा दीखता है। तथापि भगवान्‌के विधानके अनुसार जो भी सुख या दुःख उपस्थित हो जाय, उन दोनोंमें समभाव रखना चाहिये, अर्थात् दुःखसे उद्विग्न नहीं होना चाहिये और सुखमें लट्टु नहीं बनना चाहिये। दोनों ही मेहमानके समान अस्थायी हैं—जानकर सभी इष्टानिष्ट-परिस्थितियोंमें अपनी समग्र चित्तवृत्तियोंको सर्वदा सच्चिदानन्द-परमात्माभिमुखी ही बनानेकी आदत डालनी चाहिये। अपने हृदयमें आने वाले राग-भय एवं क्रोध को हटाते रहना चाहिये, ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि-वे हृदयमें प्रविष्ट ही न होने पावें, कदाचित् प्रविष्ट होनेपर भी उन्हें वहाँ रहने ही नहीं देना चाहिये, इसप्रकार अपनी बुद्धिको सांसारिक सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंके झंझावातसे विचलित नहीं होने देनी चाहिये, किन्तु सर्वदा स्थिर-शान्त रखनी चाहिये, यह तभी ही हो सकता है-जब हम हरदम मुनि

वने रहेंगे। उस परम-तत्त्वका-जो समग्र विश्वके-अन्दर-बाहर व्याप्त है- स्वयंप्रकाश-अद्वयानन्दनिधि है-मनन-अनुसंधान करते रहेंगे। तब हम सभी परिस्थितियोंमें सर्वदा निर्द्वन्द्व-मस्त-आनन्द प्रसन्न रह सकते हैं। यही श्रीभगवान्‌का उपदेश है।

## चन्दनवाडी, शेषनाग एवं पंचतरणी ।

रमणीय-पहलग्राममें करीब एकमास निवास करनेके बाद हम सब अमरनाथ-भगवान्‌के दर्शनके लिए प्रस्तुत होगये। उसके लिए आवश्यक-सभी सामग्रियां जूटाई गई। अमरनाथकी यात्रामें तम्बू, सभी खाद्य-सामग्री एवं पात्र घोड़ोंपर लादकर लेजाने पड़ते हैं, जलाने की लकड़ियांतक भी साथमें लेजानी पड़ती हैं। क्योंकि-आगे मार्गमें कुछ भी नहीं मिलता। पहलग्रामसे प्रथम चन्दनवाडीका पडाव आता है। इसके आगे पिस्सुघाटीकी बड़ी जबरी चढाई शुरु होती है। चढते समय—आँखोंसे ऊपर देखनेपर ऐसा मालूम पडता है कि-आगेके यात्री हमारे शिरके ऊपरसे ही जा रहे हैं, ऐसी खड़ी तीन मिलकी चढाई है। ऐसी चढाई भी हमारे सभी महात्मा-मिलिटरी-पल्टनके समान महादेव-महादेवके पावन नामोंकी गर्जना करते हुए-अनायासतः चढ गये। हमारे पुराणोंमें महादेवनामकी गर्जनाका ऐसा माहात्म्य बतलाया है कि—

> महादेव ! महादेव ! महादेवेति यो ध्वनिः ।
> स एव मुक्तिकन्यायाः पाणिग्रहणडिण्डिमः ॥
> महादेव ! महादेव ! महादेवेति यो वदेत् ।
> वत्सं गौरिव गौरीशो धावन्तमनु--धावति ॥

अर्थात् महादेव ! महादेव ! महादेव ! ऐसी जो ध्वनि है, वह मानो-मुक्तिरूपी कन्याका ध्वनिकर्ताके साथ पाणिग्रहण (विवाह-लग्न) के लिए डण्डिमका घोष है। महादेव ! महादेव ! महादेव ! ऐसा जो बोलता है—तो उस-दौड़कर बोलने वालेके पीछे-गौरीशंकर-भगवान्

बछड़ेके पीछे गायके समान-दौड़ता है।

पिस्सुघाटी चढजानेके बाद ऊपर छोटासा मैदान आता है। यहाँ-थण्डीका प्रकोप खूब ही बढ जाता है। यात्रीको गरम कपड़ोंसे लदे रहना पड़ता है। चारों तरफ ऊँचे ऊँचे-बोडे वृक्ष-विहीन शिखर ही शिखर नजर पड़ते हैं। ५००-७०० फूट नीचे जोरोंसे बहती हुई-गम्भीर ध्वनि करती हुई-शेषनागी नदीके साथ यात्रीको ऊपरके मार्गसे चलना पड़ता है, बीचमें कई जगह नालोंमें जमाहुआ बरफ भी मिलता है। द्वितीय पड़ाव शेषनागका आता है, यहां चारों तरफ बरफसे लदे हुए पर्वत-शृंग—ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, गणेश, गौरी आदि अनेक नामोंसे विख्यात—दृष्टिगोचर पड़ते हैं। यहां शेषनागका बड़ा विशाल सुन्दर सरोवर है, जिसके स्वच्छ-जलमें अनेक-प्रकारके पीत, रक्त, नीलादिरंगों का आभास होता है। इसी ही सरोवरसे शेषनागी नदी बहती है। ऐसे अति-शीत प्रदेशमें दाल-भात पकते ही नहीं, कच्चे ही रह जाते हैं, अतः केवल रोटी, पुरी, शिरा, शाकादिसे ही यात्रीको उदरपूर्ति करनी पडती है। यहां ऐसा गुल्मजैसा दो-तीन फूट ऊंचा छोटी-छोटी पत्तियों वाला, हराहरा घास होता है-जिसमें दिवासलाई लगानेपर-पानीसे तरबोर हुआ भी वह सुखेघासके समान ऐसा भड़-भड़-जलता है-जिसे तापकर आश्चर्य-मुग्ध हुआ यात्री अपनी शीतव्यथा शमनकर गरमीके सुखका आस्वाद लेता है।

शेषनागसे आगे तृतीयपडाव-पंचतरणी का आता है। बीचमें कई मीलों तक बरफ ही बरफ पड़ी मिलती है, चारों तरफ मानों-सफेद चमकती हुई-चांदी ही चांदी-कुदरतने बिछाई न हो, ऐसा मन-मोहक-भव्य-दृश्य मालूम पड़ता है, और निर्भय-यात्रीका मनोमयुर प्रफुल्लित होकर नाच उठता है। प्रातः सूर्योदयके साथ हिमधवल-शिखर अपने विविध रूप दिखाने शुरु करते हैं, प्रारम्भमें ऐसा प्रतीत होता है कि-जैसे चांदीके ढेर चारों तरफ लगे हों, थोड़ी देर बाद चांदी सोना बन जाती है, और ऐसा लगता है कि-हिमालयने अपने आंगनमें सोनेके

ढेर लगा दिये हैं। कहीं कहीं बरफके नीचे छोटे-छोटे बहने वाले झरनों की आवाज सुनते हुए-यात्रीको बरफके ऊपरसे जाना पड़ता है। श्रावणमास में जब बरफ गल जाती है-तब कुदरत यहां ऐसा बढ़िया-विविध रंग-एवं आकृति वाले फूलोंका बगीचा लगा देती है कि-जिसे देखकर यात्री आनन्द-मग्न बन जाता है।

जो पैदल नहीं चल सकता है, उसके लिए घोड़ेकी या डोलीकी सवारी मिल जाती है। यहांके काश्मीरी-मुसलमान-कुली बड़ी सावधानी से यात्रीको सुरक्षितरूपसे ले जाते हैं, ब्राह्मण-पण्डे भी सहायक होजाते हैं। कहीं कहीं मार्ग इतना संकडा मिलता है कि-चलनेपर कमजोर यात्री डर जाता है-तथापि अमरनाथ भगवान्-सबका बेड़ा पार लगा देते हैं। पंचतरणीमें लम्बा-सा मैदान है, जिसमें अनेक धाराएँ बहती रहती हैं, इसलिए 'पंचतरंगिणी' ऐसा इसका मूल संस्कृत नाम है, तरंगिणी-यानी जोरसे बहने वाली छोटी नदी, जिसमें उछलते-कूदते अनेक तरंग दृष्टिगोचर पड़े। एक तरफ तम्बू लगाकर यात्री गण निवास करते हैं। यहाँका जल इतना भयंकर ठण्डा है कि- हाथ डालनेपर जैसे बिच्छुका चटका लगा हो—ऐसा तीक्ष्ण-वेदनाप्रद मालूम पड़ता है। तथापि सशक्त-श्रद्धालु-यात्री इसमें डुबकी लगाते ही हैं। हमारे सभी महात्मा डुबकियाँ लगाते थे, मैं भी बराबर इन्हीं शीतलतर-जलों में स्नान करता था! चितौड-गढ़के किलेका विजय करनेके समान स्नान करना शौर्य-साध्य होजाता था। शीतनिवारणके लिए रात्रिमें भी सिर्फ डबल एक ही कम्बल ओढ़ता था। कूरता, स्वेटर आदि कुछ भी नहीं पहिनता था। यहांके शैत्यके प्रकोपसे सभीके मुखोंकी चमड़ी जलकर भूतनाथ जैसी श्यामवर्णकी होगई थी। जिसप्रकार अग्निकी उष्णता जलाती है, उसप्रकार शैत्यकी अधिकता भी। जैसे मनुष्य प्रेमसे रोता है, एवं शोकसे भी।

## अमरनाथ-भगवान्‌का भव्यदर्शन।

पंचतरणीसे आगे ७--८ मीलकी दूरीपर अमरनाथकी बड़ी

विशाल-गुफा है। वहाँ जानेके लिए यात्री प्रातः चलता है, और दर्शनकर मध्याह्ममें-दो-तीन बजे वापस पंचतरणी लौट आता है। गुफामें एवं आसपासमें रहनेकी कोई सुविधा नहीं है, इसलिए-सभी यात्रियोंको-गुफामें एक-दो-घण्टे तक दर्शन-पूजा-पाठ करके तुरन्त ही लौट जाना पडता है। अमरनाथकी यात्रा तभी ही सुखद-अच्छी रहती है—जब आकाश निरभ्र-साफ हो और सूर्यनारायण चमकता रहे। यदि आकाश बिगड़ गया-बादल-वर्षा आगई-तो अमरनाथ-मरनाथ होजाता है-और यात्रीकी बम बुल जाती है। अपनी इस यात्रामें आकाश खूब ही साफ रहा-सूर्यनारायण अपनी प्रखर-रश्मियोंको फैलाकर चमकता-तपता रहा। ५ मीलके बाद दो पहाड़ आते हैं, दोनोंके बीचमें नीचे अमरगंगा बहती है, और ऊपर बरफका ढेर पड़ा मिलता है, उस पर यात्रीको निर्दिष्ट-पगडंडीपर ही चलना पड़ता है, पगडंडी छोडकर स्वेच्छासे इधर-उधर चलने पर बरफमें धँस जानेका डर बना रहता है। गुफाके सामने बरफकी सतह तोडकर अमरगंगामें स्नान किया जाता है, हमारे सभी महात्माओंने भी उसमें स्नान किया। स्नानकर गुफामें जाकर भगवान्-अमरनाथका-बरफका बना हुआ-आपोलिंगका बड़े प्रेमसे दर्शन किया। पूजा, आरती, करके पश्चात् संमिलित स्वरसे महिम्नस्तोत्रका पाठ किया, शिव-नामावलिका संकीर्तन कर लगाये गये नैवेद्यका प्रसाद पाया, और खूब ही विमल-आनन्द का अनुभव हुआ।

गुफामें अमरनाथ-भगवान्का लिंग-१०-१२ फूट उंचा एवं ५-७ फूट चौड़ा कुदरती ढंगसे आपही आप बरफका बन जाता है, और नीचे जलाधारी भी बढिया बन जाती है। जैसे किसी निपुणशिल्पीने हल्के नीलवर्णके शिलाखण्डसे जलाधारी-सहित बाणलिंगका निर्माण न किया हो ? वैसा भव्य सुन्दर एवं आकर्षक-दर्शन होता है। भावुक श्रद्धालुयात्री ऐसा दर्शनकर आश्चर्य-मुग्ध होकर धन्यप्रभो ! धन्यप्रभो ! कहने लगता है, नास्तिकके शुष्क-हृदयमें भी आस्तिकता अंकुरित हो

उठती है। इस गुफामें श्वेतरंगके कबुतर एवं कबुतरीके रूपमें भगवान् श्रीशंकर भगवती-उमाके साथ दर्शन देते हैं, ऐसा धार्मिक भक्त लोग विश्वास रखते हैं, हमारे सभी महात्माओं को भी उन्होंने प्रेमसे दर्शन दिया था, उनका दर्शन कर यात्री अपनी यात्राकी सफलता मानता है। अमरनाथकी यही गुफा है—जिसमें बैठकर जगद्गुरु भगवान् श्रीशंकरने भगवती पार्वती को अमरविद्याका उपदेश दिया था। और साथ ही गुफाके भीतरके ऊंचे छिद्रपर बैठकर तोता (शुक) रूपसे इसी ही अमरविद्याके प्रशस्त-उपदेशको छिपकर-श्रीशुकदेवजीने पूर्वजन्ममें सुनाथा, ऐसी किंवदन्ती सुननेमें आती है।

## अमरनाथ-भगवान्‌की स्तुति-प्रार्थना।

वार-वार दर्शन करने पर भी मनको तृप्ति नहीं होती थी। आखिर-वहांसे लौटने का समय होजानेपर हमने अन्तमें इस प्रकार अमरनाथ-भगवान् की स्तुति एवं प्रार्थना की—

ब्रह्मेन्द्रविष्ण्वादिसुरार्चिताय, देवाधिदेवाय महेश्वराय।
अनन्तकल्याणगुणार्णवाय, शिवासमेताय नमः शिवाय ॥१॥

वेदान्तवेद्याय महोदयाय, कैलासवासाय शिवाधवाय।
शिवस्वरूपाय सदाशिवाय, शिवासमेताय नमः शिवाय ॥२॥

दयासमुद्राय सुरोत्तमाय, कर्पूरगौराय सुधामयाय।
श्रीनीलकण्ठाय मयस्कराय, शिवासमेताय नमः शिवाय ॥३॥

कुन्देन्दु--शंखस्फटिकोपमाय, श्रीशंकरायाश्रितवत्सलाय।
स्वर्गापवर्गादिफलप्रदाय, शिवासमेताय नमः शिवाय ॥४॥

संसारदावानलशामकाय, मृत्युञ्जयायामितविक्रमाय।
अद्वैत-ब्रह्मप्रति--बोधकाय, शिवासमेताय नमः शिवाय ॥५॥

ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, आदि देवोंके द्वारा समर्चित, देवाधिदेव, महान्-ईश्वर, अनन्त-कल्याणमय-गुणोंके सागर, भगवती-उमासे संयुक्त-

शिव को नमस्कार है। वेदान्तवेद्य, महोदय, कैलासवासी, गौरीपति, कल्याणस्वरूप, सदाही शिवरूप पार्वती-सहचर भगवान् श्री शिवको नमस्कार है। दयाके समुद्र, देवोंमें उत्तम, कर्पूरके समान गौरवर्णवाले अमृतमय, श्रीनीलकण्ठ, सुखकर, भगवती-अन्नपूर्णाके साथी भगवान् शिवको नमस्कार है। कुन्द-पुष्प, चन्द्रमा, शंख एवं स्फटिकके समान जिसका सुन्दर-गौरवर्ण है, शरणागतोंपर वत्सके समान निर्मल-स्नेह करने वाले-स्वर्ग,अपवर्ग आदि निखिल फल देने वाले-श्रीशंकर-जो गिरि-राज-कुमारीके साथ बिराजमान हैं-ऐसे शिवको नमस्कार है। संसार-रूपी दावानलका शमन करने वाले-मृत्युञ्जय, अपरिमित-पराक्रमशाली अधिकारियोंके प्रति अद्वैत-ब्रह्मके उपदेशक सद्गुरुरूप, दुर्गा-भवानीसे संयुक्त-शिवको नमस्कार है।

विश्वेश ! विश्वनिलयस्थितिजन्महेतो !,
विश्वैकवन्द्य ! शिव ! शाश्वत ! विश्वरूप ! ।
विध्वस्तकालविपरीतगुणावभास !,
श्रीमन्महेश ! मयि धेहि कृपाकटाक्षम् ॥१॥
शम्भो ! शशाङ्ककृतशेखर ! शान्तमूर्ते !,
गंगाधरामरवरार्चितपादपद्म ! ।
नागेन्द्रभूषण ! नगेन्द्रनिकेतनेश !
भक्तार्तिहन्मयि निधेहि कृपाकटाक्षम् ॥२॥
श्रीविश्वनाथ ! करुणाकर ! शूलपाणे !,
भूतेश ! भर्ग ! भुवनत्रयगीत--कीर्ते ! ।
श्रीनीलकण्ठ ! मदनान्तक ! विश्वमूर्ते !,
गौरीपते ! मयि निधेहि कृपाकटाक्षम् ॥३॥

हे विश्वेश्वर ! हे विश्वके विलयका स्थितिका एवं प्रादुर्भावका अभिन्न-निमित्त उपादान-कारणरूप ! समग्र विश्व द्वारा एकमात्र वन्दनीय !

हे शिव-कल्याणरूप ! हे शान्त-द्वैतप्रपञ्चका उपशमरूप ! हे शाश्वत-सनातन ! हे विश्वरूप ! जिसने स्वज्ञान द्वारा कालका एवं गुणोंके विपरीत-अवभासका विध्वंस कर दिया है, ऐसे हे श्रीमन्महेश-भगवन् ! तू मुझमें कृपापूर्ण-कटाक्ष स्थापित कर। हे शम्भो ! जिसका शेखर (मस्तक) चन्द्रसे समलंकृत है,ऐसे हे शान्तमूर्तिरूप परमेश्वर ! हे गंगाधर ! श्रेष्ठ-देवोंके द्वारा जिसका चरणकमल-समर्चित है, जिसने श्रेष्ठ-नागोंका आभूषण बनाया है, एवं जिसने श्रेष्ठपर्वत-कैलासमें अपना निवास बना रक्खा है, जो भक्तोंके दुःखोंका हरण करता है, ऐसे हे ईश्वर ! तू मुझमें अपना कृपामय-कटाक्ष स्थापित कर। हे श्रीविश्वनाथ ! हे करुणानिधि ! हे शूलपाणि ! हे भूतोंके ईश्वर ! हे भर्ग ! यानी अविद्या-कामकर्मादि-का भर्जन करनेवाला स्वयं-प्रकाश-ज्योतिः स्वरूप ! भुवनत्रयमें जिसकी समुज्ज्वल-कीर्तिका मुक्तकण्ठसे गान किया गया है, ऐसे हे गौरीपते ! तू मुझमें अपना कृपाकटाक्ष स्थापित कर।

'त्वामेव वाग्वदतु, पश्यतु लोचनं मे,<br>
त्वामेव सन्नमतु, मौलिरपि, श्रुतिर्मे ।<br>
नित्यं शृणोतु चरितं तव चन्द्रमौले !,<br>
स्वामिन् ! मनः स्मरतु तावकमङ्घ्रिपद्मम् ॥

हे नाथ ! मत्तमहिषेण समं मनो मे,<br>
नायाति शान्तिमिह मे न फलन्त्युपायाः ।<br>
तुभ्यं ददामि तदिदं कृपया गृहाण,<br>
स्वीयांघ्रियुग्मकमलेषु दृढं बधान ॥

अद्यैव त्वत्पदनिलययोरर्पयाम्यन्तरात्मन् !,<br>
आत्मानं मे सह परिकरैरद्रिकन्याधिनाथ ! ।<br>
नाहं बोद्धुं तव शिवपदं, न क्रिया योगचर्याः,<br>
कर्तुं शक्नोम्यनितरगतिः केवलं त्वां प्रपद्ये ॥

हे चन्द्रमौले-शंकर ! यह मेरी वाणी तेरा ही सदा गान करती रहे, यह मेरा नेत्र समस्त विश्वमें बाहर-भीतर-व्याप्त तेरे महान्-शुद्ध स्वरूपको ही सदा देखता रहे। यह मेरा मस्तक अनेकरूपोंमें अवस्थित तुझे सदा प्रणाम करता रहे, यह मेरा कान, सर्वदा तेरे पावन-चरित्रों का श्रवण करता रहे, और हे स्वामिन् ! प्रभो ! यह मेरा मन सदा तेरे पाद-पद्मका एकाग्रतासे स्मरण करता रहे, ऐसी कृपा करना। हे नाथ ! यह मेरा मन मदोन्मत्त-भैंसे (पाडा) के समान है, इसलिए यह चंचल-विक्षिप्तसा बना रहता है, अतः यह शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता है, इसलिये मेरे अन्य-साधन भी सफल नहीं होते हैं। अतः मैं तुझे इसका दान करता हूँ, कृपा करके इस दानको तू ग्रहणकर। और इस प्रमत्त-प्रदत्त-मनको अपने युगल-चरण-कमलमें दृढ़रूपसे बांध दे। हे अन्तरात्मन् ! हे गिरिजा-नाथ ! शंभो ! अभी ही इन्द्रिय-शरीर आदि उपकरणोंके साथ इस मेरे जीवात्माको आपके चरणरूपी पावन-स्थिर शान्त-आनन्दपूर्ण-धाममें समर्पित करता हूँ। मैं तेरे महान्-शिव स्वरूपको जाननेके लिए, यागादि-शुभक्रिया करनेके लिए, एवं योगानुष्ठान करनेके लिए समर्थ नहीं हूँ। अतः मेरी अन्य कोई गति नहीं है, केवल मैं तेरेही शरणापन्न होता हूँ।

## चिन्त्य-पूर्णी-देवी।

उससमय—हमसब लाहोर (पंजाब) में रायबहादुर-मोहनलाल जी की कोठीपर-दो-तीन मास रहकर-सनातनधर्मका स्वाध्याय-प्रवचनादिके द्वारा प्रचारकर-हुशियापुर आये थे। यहां ७-८ रोज रहे, परन्तु असह्य-गरमी थी। अतः किसी हिमालयीय-शीतल-शान्तप्रदेशमें जानेकी अभिलाषा थी। सबकी अनुमतिसे भागसु-धर्मशाला जानेका निश्चय होगया। बीचमें श्रीचिन्त्यपूर्णीदेवी, श्रीविद्येश्वरीदेवी (कांगडा) एवं ज्वालामुखीदेवीके भी दर्शनका प्रोग्राम बनाया गया। हुशियारपुरसे प्रथम चिन्त्यपूर्णीदेवी आती है, अतः हम-सब, मोटरों द्वारा वहांके लिए चल पडे। उन्नत-शिखर स्थित-देवीजीके मंदिरसे नीचे डेढ़-मीलकी

दूरीपरके एक-स्थलमें मोटरें रुकीं। और हम सब 'ॐ नमः पार्वतीपतये' की मंगलमय-ध्वनिके साथ ऊपर श्रीदेवीजीके दर्शनके लिए पर्वतपर चढने लगे। शिखरपर चिन्त्यपूर्णीदेवीका छोटा-सा किन्तु बड़ा ही मनोहर मंदिर है, उसके साथ एक धर्मशाला एवं दोचार मकान भी हैं। भारतकी शक्ति-पीठोंमें इसकी भी गणना है। छिन्न-मस्ता देवीकी यह पीठ मानी गयी है। कहते हैं—इस स्थलपर कोई गृहस्थ रात्रिमें निवास नहीं कर सकता। पुजारी-पण्डे भी रात्रिमें मंदिर बंदकर नीचे चले जाते हैं। इसलिए यह स्थल अत्यन्त-पवित्र एवं श्रद्धेय माना जाता है। साधु-संन्यासी-ब्रह्मचारी संयमी ही यहां रात्रिमें निवास कर सकता है।

देवीजीके मंदिरमें पहुंचकर भगवतीका प्रेमसे दर्शनकर हमसब श्रद्धाऽवनत एवं आनन्दविभोर होगये। भेट-पूजा, आरती, स्तुति, आदि करके पश्चात् हमने संमिलितरूपसे महिम्न-स्तोत्रका पाठ किया। उसके बाद—

'हर ! शिव ! शंकर ! गौरीशं, वन्दे गंगाधरमीशम् ।
महादेव ! शिव ! शंकर ! शम्भो ! उमाकान्त ! हर ! त्रिपुरारे !।

इत्यादि-का एकाग्रतासे संकीर्तन किया। पश्चात् श्रीदेवीजीको नारियल, पेडा आदिका भोग लगाकर प्रसाद बांटा गया। प्रसाद पाकर इधर-उधरके चारों तरफके पर्वतीय-स्थलोंकी रमणीयता देखकर पुनः एकवार मंदिरमें आकर भगवतीका श्रद्धाभक्तिपूर्ण-हृदयसे दर्शन किया। और वहां बैठकर भगवतीके दिव्यस्वरूपका ध्यान किया। अब निर्दिष्ट-समय समाप्त होने आया था, इसलिए मैंने अपने सेवक-महात्मासे कहा कि—कोठारीजीसे कहो कि—अभी यहांसे चलनेके लिए सब महात्माओं को सूचित करें। समीपस्थ दो-तीन महात्माओंको मैंने भी कहा कि-चलो यहांसे, तैयार होजाओ, समय होगया, विलम्ब मत करो, मोटरें प्रतीक्षा करती होंगीं। अब यहां ज्यादा रुकना ठीक नहीं।

**भगवतीका सुन्दरतम-बालिका (किशोरी) रूपसे दर्शन।**

इतनेमें मेरे समीप ही एक-हाथकी दूरीपर एक बालिका बैठी

हुई-मधुर-स्वरसे बोली कि—'स्वामीजी ! ॐ नमो नारायणाय'। इस पावन-मन्त्रकी मधुर-ध्वनि सुनकर मैंने उस तरफ देखा कि-एक अतीव सुन्दर दश-बारह वर्षकी बालिका मंद-मंद हंसती हुई पुनः बोली कि—'ॐ नमो नारायणाय'। मैंने प्रसन्नताके साथ कहा कि-नारायण ! नारायण ! देवी भगवती, नारायण ! नारायण !। उस बालिकाका—दिव्य-गौरवर्णका सौन्दर्य एवं आकर्षक-लावण्य देखकर तथा कोकिलाकूजनवत् मधुरतम-स्वर सुनकर हृदय बडाभारी प्रभावित एवं आकर्षित हुआ। मन विचार करने लगा कि—अहा ! यह कितनी भव्य-सुन्दर बालिका है। यद्यपि इसने साधारण-स्वच्छ-सफेद-वस्त्र पहिने हैं—तथापि इसके नेत्र, ललाट, नासिका, ओष्ठ आदि सभी अंग कितने सुन्दरतम एवं दर्शनीय हैं। क्या ही बढ़िया-गौरवर्ण है, मुख कितना अद्भुत एवं आकर्षक है—

ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्र-बिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम्।

अर्थात्—मन्दमुस्कानसे शोभित, निर्मल-पूर्ण-चन्द्रमाके बिम्बका अनुकरण करने वाला और उत्तम-सुवर्णकी मनोहर-कान्तिसे कमनीय। इसके दृष्ट-सौन्दर्यके वर्णन करनेमें वाणी एवं लेखिनी सर्वथा अशक्त होजाती है।'या पश्यति न सा ब्रूते, या ब्रूते सा न पश्यति।' वाली बात हो जाती है। अर्थात् चक्षु-जो देखता है, उसमें कहने की शक्ति नहीं होती। और जिस जिह्वामें बोलनेकी शक्ति होती है, उसमें देखनेका सामर्थ्य नहीं होता। इससे उस बालिकाका सुन्दरतमस्वरूप संपूर्णरूपसे अकथनीय एवं अवर्णनीय ही होजाता है। साथमें यह भी विचार आया कि—इस सुन्दर-बालिकामें कितने अच्छे धार्मिक-शुभसंस्कार विद्यमान हैं; महात्माओंको देखकर तुरन्त ही शुद्ध-मन्त्रोच्चारणपूर्वक-अभिवादन करती है। किसी संस्कारी श्रद्धालु पण्डे-पुजारी की यह लड़की होगी।

नेत्र वहांसे हटना ही नहीं चाहते थे, कान पुनः उसकी मधुरतम

वाणी सुनना चाहते थे। परन्तु यति-परिव्राजकके संयम-धर्मका विचार कर वहांसे नेत्र हटाकर मैंने उस महात्माकी तरफ देखा, और कहा कि-क्या हुआ भाई! जल्दी करो, सब चलनेके लिए तैयार हुए कि-नहीं ?। उसने कहा-अमुक-अमुक महात्मा इधर-उधर गये हैं, कई महात्मा नीचे बावड़ी में स्नान कर रहे हैं, सबको सूचना तो दी गई है, अभी ही सब एकत्रित हो जाते हैं, इत्यादि उसकी बातें तो मैं सुन रहा था, परन्तु मन उस पार्श्व-स्थित बालिकाके सुन्दरतम-स्वरूपकी तरफ आकृष्ट हुआ पुनः पुनः उसे देखने को चाह रहा था। मैंने तुरन्त ही पार्श्वमें बैठी हुई उस बालिकाको द्वितीयवार देखा-उसने-जो मंद-मंद हँस रही थी-सामने देखकर कहा-'स्वामीजी! आपको यहां तीन रात्रि रहना होगा।' मैं उसे कहना ही चाहता था कि-हम तो अभी ही यहांसे जारहे हैं, तीन रात्रि क्यों रहेंगे ?। साथ में यह भी विचार आया कि-'यह इतनी सुन्दर-बालिका किसकी है ? कहां रहती है ? इसका विशेष-परिचय प्राप्त करना चाहिये।' परन्तु एक महात्मा सामने आकर शिकायत करने लगा कि-अमुक महात्माको मैंने कहा कि-महाराजका आदेश है-शीघ्र तैयार हो जाओ, परन्तु उसने सुना ही नहीं, वह नीचे स्नानके लिए चला गया। मैंने उसकी बात सुनकर जब उधर देखा और कहा कि-कोई बात नहीं ? शान्ति रक्खो। परन्तु मन उस बालिकाकी तरफ ही आकृष्ट था। तुरन्त ही-एक-दो मिनिट ही नहीं हुई होगी-इधर देखा तो बालिका गायब। अपहृत-धनकी गठडी वालेके समान हृदयमें गहरा धक्का लगा। तुरन्त ही मैं खड़ा होगया, शीघ्रतासे इधर-उधर देखने लगा, लम्बी दृष्टिसे देखा-परन्तु वह बालिका जाती हुई भी नहीं दीख पड़ी। मैंने सामने खड़े हुए-महात्मासे कहा-'तुमने उस बालिकाको देखा-जो मेरे समीप बैठी थी।' उनने कहा-'मैंने तो कुछ नहीं देखा'। मैंने पुनः जोर देकर कहा-'यहां जो अभी मेरे समीप बैठी थी, उसे नहीं देखा ?।' उसने कहा-'आपके समीप बैठी हुई कोई लड़की थी ही नहीं।' मैंने आश्चर्यसे हाथके इशारे द्वारा कहा-'क्यों नहीं थी, यहां ही तो

बैठी थी।' तुमने बराबर देखा नहीं होगा।

इतनेमें दो-तीन वृद्ध पण्डे वहां आये, और श्रद्धापूर्वक नमस्कार कर कहने लगे कि—'भगवन्! हमने अभी ही सुना कि-मण्डलेश्वर महाराज अपनी यति-मण्डलीके साथ भगवतीके दर्शनके लिए पधारे हैं। जैसा सुना, वैसे ही हम भागे भागे आये, और आप सब महात्माओंका दर्शन कर बड़ा आनन्द हुआ। करीब २५ वर्ष प्रथम यहां मण्डलेश्वर स्वामी परमात्मानन्दजी महाराज आये थे, और हमने उनको यहां तीन रोज रक्खा था। उनकी सेवाका अलभ्य-लाभ मिला था। अतः भगवन्! आपको भी यहाँ तीन दिन रहना ही चाहिये। अभी आप यहाँसे नहीं जा सकते। इतनेमें चार-पांच और पण्डे-पुजारी आगये, सबने मिलकर बड़ा भावभरा आग्रह किया। मुझे उस बालिका की कही हुई बात भी याद आगई। हमने पण्डोंकी बात मानली, तीन दिवस रहने का निश्चय कर लिया। सब पण्डे प्रसन्न हुये। मैंने उस बालिकाकी बात कही, और कहा कि–यहाँ जितनी तुम्हारी बालिकाएँ हों, उन सबको यहाँ बुलाओ, कुछ दक्षिणा देनी है। वहाँ रहने वाली सभी छोटी-बड़ी बालिकाएँ आगईं, सबको आठ-आठ आना दक्षिणा दी गई। परन्तु नेत्र जिस बालिकाको देखना चाह रहे थे–वह बालिका दृष्टि-गोचर न हुई।

मैंने एक पण्डेसे कहा–'कोई बालिका रह तो नहीं गई है?' उसने कहा–भगवन्! प्रायः सब बालिकाएँ आगई हैं। मैंने कहा–वह सुन्दरतम बालिका–तो यहाँ नहीं आई, जो मेरे समीप बैठी थी, और 'ॐ नमो नारायणाय' करके तीन रात्रि रहने के लिए कह गई थी। उस बालिकाके सौन्दर्यके समक्ष इन बालिकाओंका रूप तो सुवर्णके समक्ष पित्तलके जैसा है, चमकदार–असली हीराके समक्ष कांचके मैले टुकडेके समान है। वह बालिका तो अद्भुत-सुन्दरतम-स्वरूपा 'अहो दर्शनीया अहो दर्शनीया' थी। तब एक वृद्ध-भावुक-पण्डा बोल उठाकि–'साक्षात् हमारी आराध्यतमा–महाशक्ति–भगवती ही-आप महानुभावके समीप

ऐसी दिव्य-बालिका बनकर दर्शन देने आई थी। हमारी मातेश्वरी-भगवती चिन्त्यपूर्णी-देवी कभी कभी ऐसा चमत्कार दिखाती है।

ऐसा जब सुना–तब मेरे हृदयमें भी यही निश्चय होगया कि–'श्रीभगवती ही उस बालिकाके रूपमें दिव्यतम दर्शन देकर, अपनी मधुरतम कोकिलानिनाद-विनिन्दित-वाणी सुनाकर-गायब होगई।' उस समय मेरा हृदय गद्गद होगया। विग्रहरूपमें बैठी हुई–भगवतीके समक्ष मस्तक प्रेमोद्रेकसे झुक पड़ा। और सहसा मुखसे ये शब्द निकल पड़े कि–भगवती ! देवी ! तू मुझे ठग गई, मुझे क्या मालूम कि–तू ही उस बालिकाके रूपमें आकर समीपमें बैठकर दर्शन दे रही थी।

## महाशक्ति–भगवतीकी स्तुति।

उस समय भक्तवत्सला-स्नेहमयी-दयामयीअमृतमयी-आनन्दमयी महाशक्ति-भगवतीकी स्तुतिके ये श्लोक-मैं भावावेशपूर्वक बोलने लगा-

नमामि यामिनीनाथ—लेखाऽलंकृत---कुन्तलाम् ।
भवानीं भवसन्ताप——निर्वापणसुधानदीम् ॥

त्वं निर्गुणाऽऽकारविवर्जिताऽपि, त्वं भावराज्याच्च बहिर्गताऽपि ।
सर्वेन्द्रियागोचरतां गतापि, त्वेका ह्यखण्डा विभुरद्वयाऽपि ॥
स्वभक्तकल्याणविवर्धनाय, धृत्वा स्वरूपं सगुणं हि तेभ्यः ।
निःश्रेयसं यच्छसि भावगम्या, •त्रिभावरूपे ! भवतीं नमामः ॥
नमस्ते शरण्ये ! शिवे ! सानुकम्पे !, नमस्ते जगद्व्यापिके ! विश्वरूपे !।
नमस्ते जगद्वन्द्यपादारविन्दे ! नमस्ते जगत्तारिणि ! त्राहि दुर्गे !॥
अपारे महादुस्तरेऽत्यन्तघोरे, विपत्सागरे मज्जतां देहभाजाम् ।
त्वमेका गतिर्देवि ! निस्तारहेतुः, नमस्ते जगत्तारिणि ! त्राहि दुर्गे !॥
मेधाऽसिदेवि ! विदिताखिलशास्त्रसारा, दुर्गाऽसि दुर्गभवसागरनौरसंगा ।
श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा, गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥

जिसके कुन्तल (शिरके अग्र-भागके केश) द्वितीयाके चन्द्रकी

रेखासे समलंकृत हैं, जो संसारके संतापोंके बुझानेमें अमृतकी शीतल नदीके समान है, ऐसी भवानी-भगवतीको मैं नमस्कार करता हूँ। हे देवी! भगवती! यद्यपि तू वस्तुतः निर्गुण है, आकार रहित-निराकार है, व्यापक एवं असंग होनेके कारण विविध-भावोंके राज्यभूत अन्तःकरणसे बहिर्भूत भी है, अतएव समस्त-चक्षुरादि-इन्द्रियोंके अगोचर भी है, एक है, अखण्ड है, अद्वय-विभु भी है। तथापि अपने भक्तोंके कल्याणकी अभिवृद्धिके लिए तथा उनके लिए अर्थात् अपनी महिमाका ख्यापन कराकर उनकी प्रसन्नताको एवं श्रद्धाभक्तिको बढ़ाने के लिए—सगुणसाकार स्वरूपको धारण करके तू निःश्रेयस प्रदान करती है, अतएव तू भावगम्या है, अर्थात् भावभक्तिके अनुसार तू अपने स्वरूपका द्योतन करती है। इसलिए तू आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक—त्रिभावस्वरूपा है, ऐसी आपको मैं भक्तिसे विनम्र हुआ प्रणाम करता हूँ। हे शरणागतोंके मनोरथोंको पूर्ण करने वाली करुणाशालिनी, शिवशक्तिरूपा भगवती! तुझे मेरा नमस्कार हो। हे सम्पूर्ण-जगत्में व्याप्त रहने वाली! विश्वरूपा देवी! तुझे नमस्कार हो। हे जगत्के समस्त-मानवोंके द्वारा वन्दनीय-चरणकमलोंवाली! तुझे नमस्कार हो। हे जगत् को तारनेवाली दुर्गे! तुझे नमस्कार हो। तू मेरी रक्षा कर। अपार-अत्यन्त भयंकर-महादुस्तर-विविध विपत्तियोंके सागरमें डूबनेवाले-देहधारियोंके लिए हे देवी! तू ही एकमात्र गति—अवलम्बनरूपा है, तू ही निस्तारकी हेतु है, इसलिए हे जगत्को तारनेवाली! भगवती! तुझे नमस्कार है। तू हमारी रक्षा कर! हे देवी! जिससे समस्त-शास्त्रोंके सारका ज्ञान होता है, वह मेधाशक्ति-शारदा आप ही हैं। दुर्गम-भवसागरसे पार उतारने वाली-नौकारूप-दुर्गादेवी भवानी भी आप ही हैं। आप सर्वदा असंग ही रहती हो। कैटभ-राक्षसके शत्रु-भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें एकमात्र निवास करनेवाली भगवती महालक्ष्मी, तथा भगवान् चन्द्रशेखर श्रीशंकर द्वारा संमानित-भगवती गौरीदेवी भी आप ही हैं।

विश्वेश्वरि ! त्वं परिपासि विश्वं, विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम्।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति, विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः॥

उत्तप्तहेमरुचिरां रविचन्द्रवह्नि-नेत्रां, धनुश्शरयुतांकुशपाशशूलम्।
रम्यैर्भुजैश्च दधतीं शिवशक्तिरूपां,कामेश्वरीं हृदि भजामि धृतेन्दुलेखाम्॥

बालरविद्युतिमिन्दुकिरीटां ,तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम्।
स्मेरमुखीं वरदांऽकुशपाशा—भीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम्॥

बन्धुककाञ्चननिभं रुचिराक्षमालां पाशांऽकुशौ च वरदां निजबाहुदण्डैः।
बिभ्राणमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्र—मर्धाम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयामि॥

अर्थात् हे विश्वेश्वरि ! तुम विश्वका पालन करती हो, विश्वरूपा हो, इसलिये सम्पूर्ण विश्वको धारण करती हो, तुम भगवान् विश्वनाथ-की भी वन्दनीया हो। जो लोग भक्तिपूर्वक तुम्हारे सामने मस्तक झुकाते हैं, वे सम्पूर्णविश्वको आश्रय देनेवाले होजाते हैं। मैं मस्तकपर अर्ध-चन्द्र धारण करनेवाली-शिवशक्तिस्वरूपा भगवती कामेश्वरीका हृदयमें चिन्तन करता हूँ। वे तपाये हुए-सुवर्णके समान सुन्दर हैं, सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि-ये ही तीन उनके नेत्र हैं, तथा ये अपने मनोहर हाथोंमें धनुष-बाण, अंकुश, पाश और शूल धारण किये हुए हैं। मैं भुवनेश्वरी देवीका ध्यान करता हूँ। उनके श्रीअङ्गोंकी आभा (कांति) प्रभातकालके सूर्यके समान है। मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट है। वे उभरे हुए—स्तनोंसे और तीन-नेत्रोंसे युक्त हैं; उनके मुखपर मुसकान की छटा छायी रहती है, और हाथोंमें वरद, अंकुश, पाश एवं अभय मुद्रा शोभा पाते हैं। मैं अर्धनारीश्वरके श्रीविग्रहकी निरन्तर शरण लेता हूँ। उसका वर्ण बन्धुक-पुष्प और सुवर्णके समान रक्त-पीत मिश्रित है। वह अपनी भुजाओंमें सुन्दर अक्ष-माला, पाश, अंकुश, और वरद मुद्रा धारण करता है, अर्धचन्द्र उसका आभूषण है, तथा वह तीन-नेत्रोंसे सुशोभित है।

इसप्रकार मन्दिरमें जाकर भगवतीकी बार बार स्तुति एवं नमस्कार करता रहा, और एकान्तमें बैठकर उस दिव्यतम-बालिका स्वरूपिणी-भगवतीका ध्यान करता रहा। वह हृदयमें ऐसी बैठ गई थी-कि-नेत्र बन्द करते ही वह मन्द-मन्द-मुस्कान-वाला आकर्षक-तेजस्वी सुन्दर-नेत्रवाला-हृष्ट-पुष्ट-गुलाबी-गाल--वाला समुन्नत-नासिकावाला स्वच्छ-शुभ्र-समदन्तपंक्तिवाला-काले-काले कुन्तलोंसे समलंकृत लाल बिन्दीसमुपेत-भव्य-ललाटवाला एवं बिम्ब--फलके समान लाल-लाल अधरोष्ठवाला भगवतीका दिव्य-मुख अनायास ही दीख पड़ता था।

अतएव भगवत्पाद-आचार्य-श्रीशंकरने भी भगवती-गिरिराज किशोरीके निरतिशय-सौन्दर्यका महत्त्व प्रतियोगी-व्यक्तिकी हीनताका प्रदर्शनपुरःसर इसप्रकार बतलाया है कि—

'त्वदीयं सौन्दर्यं निरतिशयमालोक्य परया,
भियैवासीद् गङ्गा जलमयतनुः शैलतनये !।
तदेतस्यास्तस्माद्वदनकमलं वीक्ष्य कृपया,
प्रतिष्ठामातन्वन्निजशिरसि वासेन गिरिशः ॥'

अर्थात् हे शैलनन्दिनि ! आपके सर्वोत्कृष्ट-सौन्दर्यको देखकर अत्यन्त-भयके कारण ही गंगाजीने जलमय शरीर धारण कर लिया। इससे गंगाजीके दीन-मुखकमलको देखकर दयावश श्रीशंकरजी उन्हें अपने सिरपर निवास देकर उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाते हैं।

वहाँके पवित्रस्थलमें हम सब तीन दिवस एवं तीन रात्रि तक रहे। कुछ हलकी बर्षा होजानेके कारण गरमीका अभाव होगया था। शीतल-स्वच्छ-समीर मंदगतिसे बहते रहनेसे हुशियारपुरकी गरमीका नितान्त प्रशमन होगया था। प्रातः एवं सायं हम सब भगवतीका दर्शन करते थे। भावुक-पण्डोंके आग्रहका सन्मान कर सायं मन्दिरके चौगानमें भगवतीकी महिमाका प्रवचन भी दोरोज किया। तीन दिन रहने का यह भी आन्तरिक-अभिप्राय था कि-पुनः भगवती उस बालिकाके

रूपसे दर्शन दे। अतः मोटरवालोंको कुछ ले-देकर बड़ी मुश्किलीसे समझाना पड़ा, और चतुर्थरोज वहां आनेका प्रोग्राम बनाना पड़ा।

मन्दिरमें जब कभी कोई बालिका दीख पड़े, या मार्गमें या इधर-उधर, सर्वत्र यही सहसा भावना होजाती थी कि—कहीं वही न हो, परन्तु विशेषरूपसे उसे देखने पर उस दिव्य-स्वरूपका दर्शन नहीं होता था। अतः मन्दिरमें जाकर मूक-भाषामें भगवतीसे कहता था कि—हे सर्वेश्वरी-अचिन्त्य-प्रभाव-शालिनी देवी! तूने मुझे ठग लिया।

## भगवतीका अद्वय-ब्रह्मोपदेश।

उस समय ऐसा स्पष्ट भास होता था कि—भगवतीकी वह दिव्य प्रतिमा हँस रही है, और कहती है कि-तू तो अद्वैत-वेदान्ती है, सर्वत्र अद्वय-ब्रह्मका ही उपदेश देता है, नाम-रूपको मिथ्या बतलाता है, फिर उस दिव्यरूपके दर्शनकी इतनी लालसा क्यों रखता है?, देख, विश्वके अनेक-विविध-रूपोंके द्वारा विश्वस्वरूपिणी-मैं ही सर्वत्र दर्शन दे रही हूँ। जो भी कुछ है, जितने भी स्त्री, पुरुष, बालक-बालिकाएँ, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वृक्ष, लता, पर्वत, जल-स्थल सब कुछ—चराचर विश्व मेरा ही स्वरूप है। मुझे केवल परिच्छिन्नरूपसे ही मत मान। वह प्रदर्शित साकार-स्वरूपतो चित्तकी एकाग्रताके लिए एवं उपासनाकी सिद्धिके लिए था। वस्तुतः मैं तो—

'अचिन्त्यामिताकारशक्तिस्वरूपा; प्रतिव्यक्त्यधिष्ठानसत्तैकमूर्तिः।
गुणातीतनिर्द्वन्द्वबोधैकगम्याऽहमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा॥'

'सदैकत्वं न भेदोऽस्ति, तव चैव ममास्य च।
यस्त्वं साऽहमहं या त्वं, भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात्॥
एकत्वे सति नानात्वं, नानात्वे सति चैकता।
अचिन्त्यं ब्रह्मणो रूपं, कस्तद्वेदितुमर्हति?॥

मैं असंख्य-अपरिमित-विविध उच्चावच-लघु-गुरु-समस्त-आकारोंकी अचिन्त्य-शक्तिस्वरूपा हूँ, प्रतिव्यक्तिकी अधिष्ठानभूत-आत्म-

सत्ता ही एकमात्र मेरी मूर्ति है, अर्थात् ठोस वास्तविक-स्वरूप है । मैं वस्तुतः गुणातीत हूँ, निर्द्वन्द्व हूँ, एकमात्र बोध द्वारा ही जानने योग्य हूँ, परब्रह्मरूपसे ही मैं सदा स्वतः सिद्ध हूँ । तेरा मेरा एवं इस समग्र-विश्वका सर्वदा एकत्व है, आत्मारूपसे अभेद है, वास्तविक भेद नहीं है । जो तू है, वही मैं हूँ, एवं जो मैं हूँ, वही तू है; जो कुछ भेद प्रतीत होता है, उसमें कारण है—मतिका विभ्रम । ब्रह्मविद्या द्वारा मति-विभ्रम की निवृत्ति होने पर तत्कल्पित मिथ्या भेद-भी निवृत्त होजाता है । अधिष्ठानकी वास्तविकी-एकता होने पर ही उसमें अविद्यासे नानात्व का मिथ्या भास होता है, जैसे एक-ही रज्जुखण्डमें सर्पमालादण्डादिका नानात्व अविद्यासे भासित होता है, तद्वत् । और नानात्वका प्रतिभास होनेपर भी उन सबमें अनुगतरूपसे अधिष्ठानकी पारमार्थिकी-एकता विद्यमानरहती है, जैसे नाना आभूषणोंमें स्वर्णकी अनुगत-एकता । इसप्रकार ब्रह्मका अचिन्त्य स्वरूप है, अधिकारीके विना साधारण-मानव उसे कैसे जान सकता है ? । अतः—

'चिदेव ध्यातव्या सततमनवद्या सुखतनुः,
निराधारा नित्या निरवधिरविद्यादिरहिता ।
अनास्थामास्थाय भ्रमवपुषि सर्वत्र विषये,
सदाऽशेषव्याख्यानिपुणमतिभिः ख्यातयतिभिः ॥'

अशेष—वेदादिशास्त्रोंके व्याख्यानमें निपुणमतिवाले—प्रख्यात-यति-परिव्राजकोंसे—एकमात्र स्वयंज्योतिःस्वरूप-चैतन्य ही सर्वदा ध्यान-चिन्तन करने योग्य है । जो निरन्तर निर्दोष एवं सुखरूप है, निराधार, नित्य, निरवधि एवं अविद्यादिक्लेश रहित है । विभ्रमरूप सभी नामरूपात्मक-दृश्य-विषयमें अनास्था धारण करके; या आस्था का निवारण करके ।

इसप्रकार हृदयमें स्वतः प्रस्फुटित-भगवतीके इस यथार्थ-उपदेशका मनन कर चित्त प्रेमानन्दसे लबालब भर गया । अचिन्त्य-अद्वय

ब्रह्मके स्वरूपका उपदेश देकर 'वह स्वरूप ही सर्वदा चिन्तनीय है' अन्य नहीं, ऐसा पावन-आदेश देकर भगवती चिन्त्यपूर्णी-देवीने अपने शुभनाम-का सार्थक्य प्रदर्शित किया ।

## भगवतीसे प्रार्थना ।

अन्तमें श्रीभगवतीसे यही प्रार्थना किया कि—

'सौन्दर्यदेवि ! परमे ! मधुरे ! विशुद्धे !,
आनन्दशान्तिमयरूपिणि ! भक्तिमूले !।
कामादिकल्मषविनाशिनि ! विश्ववन्द्ये !,
प्रेमामृतेन सकलान् परितर्पयस्व ॥'

हे अनन्त-सौन्दर्योंकी अधिष्ठात्री देवी ! या निरुपम-सौन्दर्यका प्रदर्शन करने वाली देवी ! हे सर्वोत्तम ! मधुर ! विशुद्ध ! आनन्दमय एवं शान्तिमय ही जिसका स्वरूप है, जो भक्तिकी मूल-कारणरूपा है, जो अपने भक्तोंके कामादि-कल्मषोंका विनाश करती है, एवं जो विश्व वन्दनीया है, ऐसी हे भगवती ! तू प्रेमामृतकी वर्षा द्वारा समस्त-विश्वके जीवोंको परितृप्त कर, क्योंकि—तू विश्वकी जननी, सुतवत्सला, कृपामयी, स्नेहमयी, क्षमामयी—आनन्दमयी, अमृतमयी माता है ।

'वितर स्वयमेव देवि ! नित्यं, त्वयि भक्तिं परमां सुखाकराम् ।
विषयेष्वितरेषु चेतसो विनिवृत्ते—र्जननीं श्रितात्मनाम् ॥
कुरु पात्रमिमं जनं तथा करुणायाः कलुषच्छिदस्तव ।
न यथाऽयमवाप्नुयाज्जनः कलुषौघैः कलिजैर्व्यथां पुनः ॥'

हे देवी ! भगवती ! स्वयं ही तू तेरी सुखोंकी खानि-अनन्या-भक्ति मुझे समर्पण कर। जो भक्ति—अपने शरणागत—भक्तोंके चित्तको अन्य-दृश्यविषयोंसे निवारणकी कारणभूत होजाती है। और इस जनको तू तेरी—कामादिकल्मषोंका छेदन करनेवाली—पावन—करुणाका उसप्रकार पात्र बना, जिसप्रकार यह जन, फिर कलि-काल-समुद्भूत-कल्मषों

(पापों) के ओघ (समुदाय) से समुत्पन्न व्यथाको प्राप्त न हो।

## ज्वालादेवीजीकी यात्रा, और मांस-मदिरा-बलिदानादि-मीमांसा।

(लेखक-प्रत्यक्षदर्शी-श्रीरामकृष्णानन्दब्रह्मचारी-यह लेख वाराणसी (काशी) से प्रकाशित-'विश्वनाथ' मासिक-पत्रके विक्रम संवत्-१९९४ के आषाढ-मासमें-अर्थात् तृतीय-वर्षके पंचम-अंक में प्रकाशित हुआ था)।

भगवती-चिन्त्यपूर्णीका दर्शनकर पूज्य-मण्डलेश्वर महाराजके साथ हम सब मोटर द्वारा-व्यासानदीको पार करके ज्वालाजी पहुँचे। भगवती चिन्त्यपूर्णी-देवीकी सात्त्विक-द्रव्योंसे ही पूजा होती है, कभी भी किसी भी प्रकारसे पशुबलि, मदिराप्रदानादि गंदा कार्य नहीं होता, और ज्वालाजी में पशुबलि आदि गंदा कार्य होता है, ऐसी प्रामाणिक बातें महात्माओंने प्रथमसे ही सुन रक्खीं थीं। इसलिए-भगवती ज्वालादेवीके विधिवत्-दर्शन, पूजन, प्रार्थना आदिके अनन्तर महात्मा लोग पण्डोंसे कहने लगे कि—ऐसा अत्याचार, पावन-सनातन-धर्मके नामपर क्यों किया जाता है ?

जो देवी जगन्माता है, मनुष्य, पशु-पक्षी, चर-अचर सबकी जननी है, सबके साथ प्यार करती है, यथा-योग्य सबका रक्षण, भरण, पोषण करती रहती है, वह दयामयी मा अपने निरपराध पशु-सन्तानों का गला-काटना क्यों चाहेगी ?। एक पण्डा बोला कि—मनु-महाराजने कहा है—

'न मांस-भक्षणे दोषो, न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥'

(मनुस्मृति० ५।५६)

अर्थात् मांस—भक्षणमें, मदिरा-पान में एवं मैथुन करनेमें कुछ भी दोष नहीं है। क्योंकि-यह प्राणियोंकी स्वाभाविकी-प्रवृत्ति है, यदि उनसे निवृत्ति हो जाय तो महाफल प्राप्त हो।

स्वामीजी-(महामण्डलेश्वर महाराज)-आप लोग इस श्लोकका

रहस्य नहीं जानते, यह मनुका श्लोक 'मांसादि–भक्षणमें दोष नहीं है' ऐसा नहीं कहता, किन्तु अदोष नहीं है, अर्थात् "द्वौ नञौ प्रकृतमर्थं गमयतः" (दो नञ् प्रत्यय प्रकृत-अर्थको बतलाते हैं) इस न्यायसे 'निश्चयसे दोष है ? ऐसा कहता है, क्योंकि–स्वयं मनुमहाराज इस श्लोकसे प्रथम के श्लोकों में मांस–भक्षणादिसे दोषोंका निरूपण कर आये हैं, इसलिये पूर्वश्लोकों की संगतिके लिये इस श्लोकमें व्याकरणके नियमानुसार 'न मांस भक्षणेऽदोषः' इसप्रकार अवग्रह निकालकर 'अदोषो न किन्तु दोष एव' ऐसा समझना चाहिये। जिससे मनुके पूर्वापर-श्लोकोंकी संगति होगी, अन्यथा पूर्वके श्लोकोंमें वेही मनु-महाराज मांस–भक्षणादि में जबरदस्त दोषोंका प्रतिपादन करें और इस पीछेके श्लोकमें 'दोष नहीं है' ऐसा कहें, तो पूर्वके अपने वचनोंसे ही विरोध होगा, जो किसी को अभीष्ट नहीं। इसलिये अवग्रह निकालकर "अदोषो न किन्तु दोष एव' ऐसा अन्वय करना युक्ति–संगत है एवं प्रामाणिक है।

पण्डे-लोग (श्रीमण्डलेश्वर महाराजसे)–बतलाइये। पूर्वके कौन वे श्लोक हैं, जिनमें दोषोंका निरूपण है ?।

स्वामीजी—कान खोलकर सावधानीसे पूर्वके श्लोक सुनिये—

## मांस-भक्षण में दोष।

मनु महाराज कहते हैं—

'नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां, मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥'

(मनुस्मृति० ५।४८)

अनुमन्ता विशसिता, निहन्ता क्रय–विक्रयी।
संस्कर्ता चोपहन्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥

(मनु०-स्मृति० ५।४१)

मां स भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांस---मिहाद्म्यहम् ।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

( मनु-स्मृति० ५।५५ )

प्राणियोंकी हिंसा किये बिना किसी अन्य उपायसे मांस पैदा होता नहीं, किन्तु प्राणियोंके वधसे ही मांस पैदा होता है, और प्राणियोंका वध स्वर्गका साधन नहीं है, किन्तु नरकका साधन है, इस लिए श्रेयार्थी को मांसका परित्याग शीघ्र ही करना चाहिये।

यदि कोई वावदूक- कहे कि-हम तो केवल मांस खाते हैं, किसी निरपराध-प्राणीका गला थोड़े ही काटते हैं, गला काटने वाले ही घातक कहलाते हैं, अतएव उनको ही दोष होगा, हम खादकों को दोष क्यों होगा ? इसके उत्तरमें मनु-महाराज कहते हैं कि—यदि संसारमें कोई खादक न हो तो घातक भी कोई नहीं हो सकता * इसलिये केवल गला काटने वाला निर्दयी ही घातक नहीं होता, किन्तु (१) मांस खाना अच्छा है, ऐसी अनुमति (सलाह) देनेवाला (२) छुरी आदि शस्त्रोंसे अङ्गोंको अलग-अलग-कर काटने वाला (३) गला काटने वाला-महाक्रूर-राक्षस (४) अपने लिए या अन्य के लिये मांस खरीदने वाला (५) बेचने वाला-व्यापारी (६) मांसको पकानेवाला रसोईया (७) परोसने वाला (८) और मांस खाने वाला मनुष्य-पिशाच, ये आठ नरकगामी घातक कहलाते हैं।

मांस-शब्दके अर्थसे भी मनु-महाराज मांस-भक्षणमें महादोष

---

* पूज्य भोले बाबा जीने क्या ही अच्छा कहा है—कि—
'खादक न कोई हो जहाँ; घातक न कोई हो तहाँ,
घातक नरक में जाय खादक जाय है पहिले वहाँ।
ग्राहक करे वध द्रव्यसे, खादक करे वध खायके,
घातक करे वध बांधकर सूना-सदनमें लायके ॥

बतलाते हैं-जिस पशु-पक्षी आदिका मांस, मैं इस जन्ममें खाता हूँ (स) वह पशु-पक्षी आदि प्राणी दूसरे जन्ममें ( मां ) मुझको यानी मेरे मांसको निश्चयसे खावेंगे, यही मांस में मांसपना है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं।

ठीक ही तो है—अन्तर्यामी ईश्वर-न्यायकारी है, जो जैसा करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है।

जो निर्दयी अपने पापी पेटको भरनेके लिये माताके नाम पर निरपराध—निःसहाय-मूक-प्राणियोंकी गर्दन काटता है, वह निर्दोष कैसे रह सकता है ? कदापि नहीं। अवश्य ही वह निर्दोष-प्राणियोंकी हत्या करने एवं कराने वाला-जगदीश्वरके प्रबल-पक्षपातशून्य-शासन द्वारा दूसरे जन्ममें इसवर्तमान-मनुष्य-शरीरसे छूटकर पशु-पक्षी बनेगा, और किये हुए-कुकर्म-का बदला चुकानेके लिए अपना गला कटायेगा। मांस भक्षीका परलोक बिगड़ जाता है, पशु, पक्षी आदि-अनेक-अधम-योनियोंमें जन्म लेकर बार-बार अपना गला कटाना पड़ता है। यदि जिसने भिन्न-भिन्न जातिके बकरा-मुरगा आदि एक-हजार पशु-पक्षियोंका मांस खाया है, तो उसको तत्तत्पक्षीपशुओंके रूपमें हजारबार जन्म ग्रहणकर गला कटा-कटाकर बार बार मरना पड़ेगा। यही दोष एवं अनर्थ मनु-महा-राजनेअपने पूर्व-श्लोकोंमें बतलाये हैं, कहिये ! पण्डेजी ! मांसभक्षणसे कितना जबरदस्त अनर्थ होता है, इसलिए मनुके श्लोकसे मांस-भक्षणमें कभी दोषाभाव नहीं समझना। इसप्रकार शास्त्र-प्रमाणयुक्त-एवं युक्तिपूर्ण-श्रीपूज्य स्वामीजीका भाषण सुनकर वह पण्डा चुप हो गया, यानी मौन-भाषणसे उसने अपनी भूल स्वीकार कर ली। पश्चात् श्रीस्वामीजी महाराजने मदिरा-पानमें दोष बतलाये।

## मदिरा-पानमें-दोष।

अनेक-जीवोंकी हिंसासे मदिरा बनती है, मदिरा-पानसे मनुष्य बुद्धि-शून्य, दुर्गन्ध-व्याप्त एवं पागल होजाता है। मदिरामत्त-मनु-जाधम अपने माता-पिता आदि प्रिय-बन्धुओंतकका भी बध कर

डालता है, ऐसी घटनाएँ समाचार-पत्रोंमें अनेक-बार प्रकाशित हुई देखनेमें आती हैं। मदिरा-लोलुप धनका नाशकर धनीसे दरिद्री होजाता है, इत्यादि अनेक-दोष मदिरापानमें सभीको यथासंभव प्रत्यक्ष हैं।

अतएव मनु-महाराजने भी अपनी स्मृतिमें सुरा-पानके इस-प्रकारके दोष बतलाये हैं—

'सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत्।
तया स काये निर्दग्धे मुच्यते किल्बिषात्ततः॥
(मनुस्मृति० ११।६१)

सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते।
तस्माद् ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत्॥
(मनुस्मृति० ११।६४)

यह द्विज (ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य) लोलुपतासे सुरापान करता है, तो उससे उसको महापाप पैदा होता है, उस पापका निवारण करनेके लिये अग्निसे अतीवतप्त-अत्युष्ण-रक्तवर्णकी सुरा पीकर अपने शरीर को जलाकर उस पापसे छूट सकता है, यही उसका प्रायश्चित है। सभी अन्नोंका मल सुरा है, मल नाम पापका है, इसलिये ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य, पापरूप-मदिराका पान कदापि न करे।

जब पूर्वोक्त—मनुके श्लोकोंके पर्यालोचनसे मदिरापानमें दोष स्पष्ट प्रतीत होता है, तब उक्त श्लोकसे-'न मद्ये दोषः।' ऐसा समझना मूर्खता है, किन्तु 'मद्ये अदोष इति न, किन्तु दोष एव' ऐसा समझना ही उचित है, और पूर्वापर-श्लोकोंकी संगतिके अनुकूल है। इस प्रकार अन्यान्य-शास्त्रोंमें भी मदिरा-पानकी बड़ी भारी निन्दा की है। जैसे—

एकतश्चतुरो वेदाः, ब्रह्मचर्यं तथैकतः।
एकतः सर्वपापानि, मद्यपानं तथैकतः॥

वैकल्यं धरणीपातमयथोचित----जल्पनम् ।
सन्निपातस्य चिह्नानि मद्यं सर्वाणि दर्शयेत् ॥
मद्यपस्य कुतः सत्यं ? दया मांसाशिनः कुतः ?।
चित्तं भ्रान्तिर्जायते मद्यपानात् भ्रान्ते चित्ते पापचर्यामुपैति ।
पापं कृत्वा दुर्गतिं यान्ति मूढाः, तस्मान्मद्यं नैव पेयं न पेयम् ॥

(सुभाषित—रत्नाकर)

अर्थात् एक-तरफ समस्त वेदविहित-पुण्यकर्मानुष्ठान, और एक तरफ ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन; तथा एक-तरफ तमाम पाप, और दूसरी तरफ मद्यपानसे होनेवाला पाप, दोनों समान है। विकलता, पृथिवीमें गिर पडना, बकवाद करना, इत्यादि सन्निपात-रोगवाले मनुष्यमें जो चिन्ह दिखाई देते हैं, वे सब मदिरापायीमें मौजूद रहते हैं। मद्यपीनेवालेके पास सत्य कैसे रह सकता है ? एवं मांस खानेवालेके पास दया कैसे रह सकती है ? मदिरा पानसे चित्त, विवेक रहित हो जाता है, विवेक-रहित भ्रान्त-चित्तमें पापमयी-चेष्टा होती है। पापसे मूढलोग नरकादि दुर्गतिको प्राप्त होते हैं, इसलिए मदिरापान कदाचित् कहीं भी किसीप्रकारसे भी नहीं करना चाहिये ।

## मैथुनमें दोष ।

प्रशस्त-सन्तानोत्पत्तिके लिये ऋतुकालमें एकबार अपनी धर्म-पत्नीका सम्बन्धरूप-मैथुन संयमपूर्ण होनेके कारण ब्रह्मचर्य कहा जाता है—'ऋतुकालाभिगामित्वात् ब्रह्मचारी गृहीरितः'। इस मर्यादासे अतिरिक्त उच्छृंखल-मैथुन, दोषपूर्ण एवं अधर्ममय है। मर्यादा-शून्य मैथुनसे मस्तक बिगड़ जाता है, रक्त दुषित होकर अनेक रोग उत्पन्न होते हैं, शरीर दुर्बल, खोखला, और हड्डियोंका ढाँचा मात्र ही रह जाता है, गाल पिचक जाते हैं, मुखका चेहरा निस्तेज, पीला होजाता है, आँख कान आदिमें कमजोरी आजाती है, बुद्धि-शक्ति एवं प्राणशक्तिका विनाश होनेसे मनुष्य शीघ्र ही मर जाता है। इत्यादि अनेक दोष

शास्त्रोंमें वर्णन किये हैं। अतएव—शिवसंहितामें कहा है कि—

"मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।' वीर्यपातरूप व्यभिचार मरण है, वीर्यधारणरूप ब्रह्मचर्य ही जीवन है। इसलिये मैथुनमें दोषाभाव कदापि नहीं हो सकता, किन्तु उसमें भयङ्कर दोष है, ऐसा निश्चय करना चाहिये।

## तामसी-पूजन का निषेध।

एक ओर पण्डा बोला-आपका कहना ठीक है, स्वामीजी महाराज! परन्तु तन्त्र-ग्रन्थोंमें देवीजी की मांस-मदिरादि द्रव्योंसे भी पूजा लिखी है, पशुओंके बलिदानका वर्णन है, इसलिये यहां भी तन्त्रोक्त-वचनोंके अनुसार ऐसा कार्य किया जाता है।

स्वामी जी-तन्त्रोंका रहस्य आप लोग नहीं जानते, तन्त्रोंमें तो इन तामसिक-द्रव्योंसे पूजनका स्पष्ट निषेध किया है, देखिये! अगस्त्य संहिता-तन्त्र में कहा है—

'आवाभ्यां पिशितं रक्तं, सुरां वापि महेश्वरि!
वर्णाश्रमोचितं----धर्ममविचार्यार्पयन्ति ये॥
भूत---प्रेत---पिशाचास्ते भवन्ति ब्रह्मराक्षसाः॥'

भगवान् शंकर पार्वती जी से कहते हैं—हे देवि! जो लोग वर्णाश्रमोचित-धर्मका विचार न कर अपने दोनोंके पजनमें मांस, रक्त और मदिरा को अर्पण करते हैं, वे लोग मरकर भूत, प्रेत, पिशाच, एवं ब्रह्मराक्षस होते हैं, अर्थात् उनकी अधोगति होती है।

इसी प्रकार दूसरे तन्त्रों में भी मांस-मदिराका निषेध बड़े जोर दार शब्दोंमें किया है।

'ब्राह्मणो मदिरां दत्त्वा ब्राह्मण्यादेव हीयते।
स्वगात्ररुधिरं दत्त्वा ब्रह्महत्यामवाप्नुयात्॥' (भैरव-तन्त्र)

ब्राह्मण यदि देवी-पूजामें मदिराका प्रयोग करता है, तो वह

अपनें ब्राह्मणत्व-धर्मसे च्युत होता है। देवी जी की स्वभूत-संतान-पशु आदि के शरीरका रुधिर पूजा में देकर ब्राह्मण ब्रह्महत्याको प्राप्त होता है। "द्रव्येण सात्विकेनैव ब्राह्मणः पूजयेच्छिवाम् ।, । ( मेरुतन्त्र )

सात्त्विक-द्रव्यसे ही ब्राह्मण, शक्तिका पूजन करे। तामसिक द्रव्यसे कदापि न करे, इस श्लोक-घटक अन्य-योग-व्यवच्छेदक-एव कार, तामसिक-द्रव्यका निषेध करता है ।

पण्डे जी ! देवी शब्दका अर्थ समझिये ! देवी कौन है ? जो दैवी सम्पदा से पूर्ण है, उसे देवी कहते हैं। श्रीमद् भगवद् गीताके सोलहवं अध्याय के १, २, ३, श्लोकमें अभय, सत्त्व-संशुद्धि, अहिंसा, भूतोंमें दया, अलोलुपता, मार्दव, आदि छब्बीस-प्रकारके दैवी गुणों का वर्णन है। उनका विचार कीजिये। 'अभय दान क्या है ? स्वयं अभय होना, और अन्य सभी जीवोंको अपनी ओरसे अभय दान देना, जो अन्य जीवों को भय प्रदान करता रहता है, वह अभय कैसे रह सकता है ? कदापि नहीं। 'सत्त्व-संशुद्धि' यानी अन्तःकरणकी निर्मलता, जिसमें क्रूरता, कठोरता, क्रोध आदि मल न हों, वह अन्तःकरण निर्मल कहा जाता है। मन, वाणी और शरीरसे किसी भी जीवको कष्ट नहीं पहुँचनेको 'अहिंसा' कहते हैं, भूतोंमें दया यानी सभी जीवोंके प्रति दयाभाव रखना, जैसा हम अपने प्रति दया-भाव रखते है, वैसा। पण्डेजी ! ख्याल करो ! यदि तुम्हें कोई खूंटेसे बांधकर तुम्हारे गलेपर छुरी फेरने के लिये तैयार हो जाय तो तुम अपनेको दयनीय समझकर दूसरोंसे अपने जीवन-दानके लिये दयाभाव चाहोगे न ? ठीक, वैसा ही दया-भाव अन्य निरपराध-निःसहाय जीवोंके प्रति रक्खो'।

जब देवी, दैवी-सम्पत् से युक्त हे, चराचर-विश्वकी स्नेहमयी-दयामयी माता है, तो वह अपनी पूजा के बहाने किसी अपनी प्यारी सन्तानका बलिदान कैसे स्वीकार करेगी ? जीव-हत्यासे वह कैसे प्रसन्न होगी ?। परन्तु बड़े ही अफसोस एवं लज्जा की बात है कि-मांस-मदिरा-लोलुप नीच-लोग, अपने स्वार्थवश जीवहत्यारूप बलिदान

का समर्थन करते हिचकते नहीं हैं। अपने पापी पेटके लिये, एवं राक्षसी जिह्वाको तृप्त करनेके लिये राक्षसों की तरह गरीब दुर्बल-पशुओंको धर्मके नाम पर, माताकी प्रसन्नताके नाम पर, मारते शरमिन्दे नहीं होते, अरे! चुल्लू भर पानीमें डूब नहीं मरते, धिक्कार है। नन्हीं-सी सूई या छोटा-सा काँटा चुभ जाने पर तुम तो तिलमिला उठते हो, हाय तोबा मचाते हो, परन्तु क्या गला काटनेसे उन पशुओंको कुछ भी कष्ट नहीं होता होगा ?। अतः सावधान! होशमें आ जाओ !! माताके नामपर पशुओंकी बलि देना तुरन्त बन्द कर दो, तामसी-पूजासे पापाचारी-पूजक को अवश्यमेव नरककी प्राप्ति होती है, इसमें कुछ भी संशय नहीं।

जब तन्त्र-ग्रन्थोंमें ही तामसी पूजाका निषेध लिखा है, तब उसके विरुद्ध तामसी-पूजाका विधान कैसे हो सकता है? यदि जहाँ कहीं तामसिक-विधान मिलता भी हो तो उसको या तो विषयी-पामर कामान्ध मांस-मद्य लोलुप अनाचारी मनुष्यों की काली करतूत ही समझनी चाहिये, या उसका कुछ तात्त्विक रहस्य समझना चाहिये। क्योंकि-तामसिक कार्य कदापि धर्म नहीं हो सकता, जब हिंसा-व्यभिचार, आदि भी धर्म हो जायेंगे तो हम अधर्म किसको कहेंगे ?; इसलिये जो भगवती-माता के नाम पर हिंसा आदि गंदा कार्य करेगा, उसे भगवती की तरफसे भीषण दण्ड प्राप्त होगा, उसको नरकाग्निमें असंख्य-वर्षों तक जलना पड़ेगा, यह शास्त्र एवं युक्ति-सम्मत सिद्धान्त है।

इस विषयमें यदि किसी पंडित-मानी को कुछ बोलना हो तो वह बेशक बोल सकता है, उसके लिये मैदान खुला है, शास्त्रार्थके लिये खुला चैलेंज है, मैं अपने साथियोंके साथ इसलिये भारतमें भ्रमण करता हूँ कि-सनातन-धर्मके पवित्र एवं परम-प्रामाणिक-सिद्धान्तोंके ऊपर ननु-न च करने वाला कोई भी माईका लाल-छाती ठोककर सामने आ जाय, महादेव बाबा पांच-दश मिनटमें ही उसके मुखका मुद्रण कर देंगे।

अतएव चिन्त्यपूर्णीकी तरह इस ज्वाला-भगवतीके मन्दिरमें

भी इस विषयको अत्यधिक स्पष्ट करनेके लिये दो रोज मेरा धार्मिक प्रवचन होना चाहिये, क्योंकि—हमलोग यहां दो रोज रहेंगे। आप लोग प्रवचनके लिये मुझे सूचना देना, समय पर मैं आजाऊँगा। इस प्रकार श्रीस्वामीजीने गम्भीर एवं प्रसन्नता-मिश्रित कुछ रोष-पूर्ण मुख-मुद्रासे कहा, परन्तु स्वामीजीकी विद्वत्ता एवं प्रतिभाके सामने सभी पण्डोंका होश गुम था। पश्चात् स्वामीजी सहित सभी महात्मा अपने निवास-स्थानपर चले गये और दूसरे दिन फिर भगवतीके दर्शनार्थ स्वामीजी सहित सभी महात्मा मन्दिरमें गये, और दर्शन-पुजनेके बाद देवी-भगवतीकी अद्भुत महिमाका वर्णन करने लगे।

## भगवती की महिमा ।

अहा! भगवतीदेवी सप्त ज्योतिरूपसे इस मन्दिरमें प्रत्यक्ष है। ये ज्योतियां पाषाणमयी-दिवालको भेदकर विना किसी सहायताके अनादिकालसे निरन्तर जलती रहती हैं। जब इन ज्योतियोंको जल या दूधका भोग लगाया जाता है, तब ये ज्योतियाँ जल या दूधमें प्रविष्ट होकर कुछ समय तक उसमें नाचती रहती हैं। गोरख-डिब्बीके कुण्डकी ज्योतितो इतनी जबरदस्त है कि—दूरसे धूपबत्ति दिखाने पर चार-पांच हाथ ऊँची ज्योतिर्मयी-ज्वाला, भक्कसे ऊपर निकल आती है, यह दृश्य अतीव भव्य एवं श्रद्धा-भक्त्युत्पादक है, जल और पत्थरोंके बीचसे निरन्तर ज्योति निकलनेपर पत्थर और पानी सबके सब ठण्डे रहते हैं, उष्णताका नाम-निशान नहीं, अन्यथा इतनी बड़ी प्रदीप्त ज्वालासे सभी पत्थरोंका चूना होजाना चाहिये था। परन्तु पत्थर ज्योंके त्यों बने रहते हैं, यही तो अद्भुत-महिमा है।

## शंका—समाधान ।

इस प्रकार भगवतीकी महिमा-वर्णनके बाद एक महात्माने स्वामीजीसे प्रश्न किया कि—जब यहां भगवती ज्योति-रूपसे प्रत्यक्ष है, तो अपने पावन-नाम पर निरपराध-प्राणियोंका गला काटने वाले मांस--मद्यभक्षी इन पण्डोंको महाशक्ति-भगवती शीघ्र ही दण्ड क्यों नहीं

देती है ? ताकि-पण्डे लोग आपही आप समझ जायें, और तामसिक हत्यामय कृत्यको छोड़कर सात्त्विक-सदाचारी हो जांय।

स्वामीजी—भगवती माता है, माता स्वभावसे स्नेहमयी दयामयी एवं क्षमाशीला होती है, अतएव इन अपराधोंका वह ख्याल नहीं करती, और सहसा दृष्टरूपसे उनको दण्ड नहीं देती। "कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।" यह कथन माताके लिए प्रसिद्ध है। देवता तो द्रष्टामात्र होते हैं। जबतक इनके पूर्वके कुछ पुण्य रहते हैं, तबतक ये मौज-चैन उड़ाते रहते हैं, जब इनके पापोंकी पूरी गठरी बंध जाती है, तब आप ही आप इनके बुरे कर्म दण्ड देनेके लिए प्रस्तुत हो जाते हैं।

'कर्म प्रधान विश्व रचि राखा, जो जस करे सो तस फल चाखा।'

## बलिदानका रहस्य।

इतनेमें एक और पण्डा आया और कहने लगा कि-महात्माजी! तन्त्रोंमें बलिदान भी तो लिखा है ? तब आप निषेध क्यों करते हैं ?

स्वामीजी—ठीक है, अवश्य बलिदान लिखा है, उसका निषेध नहीं है. बलिदान जरूर करो, परन्तु किसका बलिदान ? यह कभी समझने की चेष्टा की है ? निरपराध-प्राणियोंका बलिदान नहीं, किन्तु काम, क्रोध, लोभादिक इन्द्रियोंके विकारोंका बलिदान करो; क्योंकि-तन्त्रोंमें भैंसादि-पशुओंके रूपकसे क्रोधादिकों का वर्णन किया है। भैंसे आदिमें क्रोधकी प्रबलता रहती है, अतएव क्रोधका नाम महिष है। बकरेमें जिह्वा-इन्द्रिय प्रबल है, अतएव राजस-तामस भोजनमें जिह्वाकी जो आसक्ति है, उसे बकरा कहते हैं, कबुतर पक्षीमें मैथुन-कामकी प्रबलता है, अतएव कामात्मक-मैथुनको कबुतर कहते हैं। इस प्रकार कामादि-इन्द्रिय-विकारोंका नाम ही पशु हैं। अतएव इन विकारोंकी बलिदेना ही यथार्थ बलि है। यह रहस्य महानिर्वाण-तन्त्रमें स्पष्ट लिखा है—

कामक्रोधौ द्वौ पशू इमावेव बलिमर्पयेत् ।
कामक्रोधौ विघ्नकृतौ बलिं दत्त्वा जपं चरेत् ।।

काम और क्रोध-रूपी दोनों विघ्नकारी-पशुओंका बलिदान करके जगन्माताकी शुद्ध-भावसे उपासना करनी चाहिये। यही तन्त्रोक्त-बलिदानका रहस्य है।

पण्डेजीका प्रश्न—तब क्या पशुकी बलि नहीं करनी चाहिये ?

स्वामीजी—(जोशमें) कदापि नहीं करनी चाहिये, माताके आगे बकरे या भैंसेकी जो बलि चढ़ाता है, वह बड़ा भारी अपराध करता है, यह एक भयंकर अक्षम्य एवं घोर पाप है।

## पुरोहित कौन है ?।

एक ओर पण्डा बोला—स्वामी जी महाराज! बाहर से लोग आते हैं, वे लोग माता से अपनी पुत्र, स्त्री आदि की कामना पूरी करानेके लिये मानता मानते हैं, और माताको बकरे आदि चढ़ाते हैं। उसमें हम क्या करें ?।

स्वामी जी—ठीक है, आप लोग तो तीर्थ-पुरोहित बने हैं न ? पुरोहित कौन है ? पुरोहितका क्या कर्तव्य है ? पुरो यानी सबसे पहिले अपने यजमानका हित यानी भलाई चाहे, उसका नाम पुरोहित है। पुरोहितका कर्तव्य है कि-बुरे मार्गमें चलने वाले अपने यजमानों को अच्छे मार्गमें चलने की शिक्षा दे। और शास्त्र-प्रमाणसे स्पष्ट कहे कि-अरे! भ्रममें पड़े हुए मांस-मद्य लोलुप-यजमानों! आप अपनी अतिक्षुद्र स्वार्थ-सिद्धि (धन-पुत्र वैभव आदि) के लिये भ्रमवश निरपराध-पशुओं के गले पर छुरी फेरकर मातासे स्वार्थ सिद्धिका वरदान चाहते हो, यह कैसी असंभव एवं असंगत बात है। जो निर्दोष प्राणियों की गर्दन काटकर अपना भला मनावेगा, उसका भला कभी नहीं हो सकता, हत्यारा मनुष्य कभी सुखी हो सकता है ? उसे कभी शान्ति मिल सकती है ? कदापि नहीं। जो माताके भोले-भाले प्यारे बच्चोंके

खूनसे माता के मन्दिरको अपवित्र एवं कलङ्कित करता है, उस पर माता कैसे प्रसन्न हो सकती है? सिवाय रुष्टताके। क्या आप अपनी प्यारी सन्तानकी हत्यासे प्रसन्न होवेंगे?। देखिये—महाभारतमें लिखा है कि—

"मानान्मोहाच्च लोभाच्च, लौल्यमेतत् प्रकीर्तितम्।
धूर्त्तैः प्रकल्पितञ्चैतन्नैतद् वेदेषु कल्पितम्॥"

लम्पट-लोग, मान-मोह और लोभसे मांसको खाते हैं। यह लोल्य व भोग-लालसा है, देव-देवी का पूजन नहीं है। धूर्तोंने बलि-यज्ञ आदि द्वारा धार्मिक-पवित्र स्थलमें मांस-प्रकरण घुसेड़ दिया है वस्तुतः वेदादि--शास्त्रोंमें हिंसाका विधान कहीं भी नहीं है। प्रत्युत प्रतिषेध है।

यदि शास्त्रके अनुसार बलि देनी है तो कुष्माण्ड, श्रीफल, उड़द दधि आदि से बलि देनी चाहिये।

अतएव महाकाल-संहिता में कहा है—

'सात्त्विको जीवहत्यां वै कदाचिदपि नाचरेत्।
इक्षु-दण्डश्च कुष्माण्डं तथा वन्यफलादिकम्॥
क्षीरपिण्डैः शालिचूर्णैः पशुं कृत्वा चरेद् बलिम्॥'

सात्त्विक-उपासक पशु-बलि देकर जीव-हत्या कदापि न करे, किन्तु ईख, पेठा, या काशीफल, वन्यफल, अथवा खोवा, आटा या चावलके पिण्डका पशु बनाकर बलि देवे।

इसप्रकार शास्त्र-प्रमाण एवं युक्तिके द्वारा यजमानों को समझा-कर उन्हें हत्या-काण्डसे रोकना ही पुरोहित का कर्तव्य है।

## प्रश्नोत्तर।

पण्डा—अगर इस रीतिसे पशु-बलि बन्द कर देंगे तो यहाँ दर्शन करने कौन आवेगा?

स्वामीजी—वाह ! वाह ! यह कैसा आश्चर्य का प्रश्न है, काशी, अयोध्या, वृन्दावन आदि तीर्थों में क्या सभी पशु-बलि करने के लिये जाते हैं ? क्या यहाँ भी सभी यात्री इसीलिये आते हैं ? हम सब महात्माओं को देखिये। अरे भोले-पण्डेजी ! पशु-वध बंद करनेसे आपकी यात्रा घटेगी नहीं, प्रत्युत बढ़ेगी। पशु-वध होनेके कारण बहुतसे सात्त्विक-सज्जन धनी यहाँ प्रकट-प्रभावा-माताके दर्शनके लिये भी नहीं आते। अमृतसर लाहौरमें हम लोगोंको बहुतसे धनी सज्जनोंने मना किया था कि—ज्वालाजी जाकर क्या करेंगे ? वहाँ पशु-बलि होती है। महात्माओंने कहा-यदि ऐसा है तो वहाँ जाकर उपदेश करेंगे, बिगड़े हुओं को सुधारेंगे, और साथ ही भगवतीका दर्शन भी हो जायेगा। देखिये, वृन्दावन, काशी आदि तीर्थोंमें सुन्दर धर्मशाला अन्न-क्षेत्र आदि कितने धार्मिक मकान बने हैं, पण्डे लोग भी माला-माल हैं, क्योंकि—वहाँ सात्त्विक धनी लोग प्रचूर संख्या में जाते हैं। और यहाँ आप लोग दरिद्र हैं, फूटे-टूटे मकान हैं, अन्न-क्षेत्र आदिका भी नाम निशान नहीं है, क्योंकि-यहां सात्त्विक धनी तो आते ही नहीं, तामसी मनुष्य धनी होते ही नहीं, तमोगुणसे उनका धन नष्ट हो जाता है। सुनिये पण्डे जी ! जब हम महात्मा लोग सबका भला चाहते हैं, तब आपका बुरा कैसे चाहेंगे ? अतः हम जो कुछ कहते हैं—वह प्रामाणिक एवं हितकर है। इसमें यजमान-पुरोहित और यात्री सभी की भलाई है। यद्यपि माता ज्वालाजी की यशः ख्याति संसारमें प्रसिद्ध है, तथापि पशु-बलिसे उसकी ख्यातिमें जो कलंक आगया है, उसमें निमित्त आप लोग हैं, अतः आप लोग उस कलंकको शीघ्र ही धो डालो, माता की प्रसन्नता प्राप्त करो, पशु-बलि हटा दो, सात्त्विक बनों और सात्त्विक होने का सभी को उपदेश दो, यही तुम्हारा कर्तव्य है, जिससे सात्त्विक धनी लोग यहां आवें, और उनकी दक्षिणासे आप लोग दरिद्रताको छोड़कर सुखी हो जावें। जो मांस-भक्षी एवं मद्यपायी हैं, वे कभी ब्राह्मण नहीं हो सकते, जो अहिंसक सात्त्विक-सदाचारी एवं प्रभु-भक्त

हैं, वे ही ब्राह्मण कहलाने योग्य हैं।

एक ओर पण्डा बोला—स्वामीजी! आप ठीक कह रहे हैं, हम बिगड़े हुए हैं, परन्तु हमने सुना है कि-काशीके दुर्गा-मन्दिरमें भी पशु-बलि होती है, और कलकत्ताकी काली तो प्रसिद्ध है ही। उनको आप क्यों नहीं सुधारते हैं, प्रथम आप उनको सुधारिये, पश्चात् हम भी सुधर जायेंगे।

स्वामी जी—बहुत अच्छा! मैं तो सर्वत्र ऐसा ही प्रचार करता हूँ, शक्तिका उपासक होता हुआ भी मैं तामसी-पूजाका कट्टर विरोधी हूँ। परन्तु बुद्धिमानको यह कदापि उचित नहीं है-कि दूसरे लोग बिगड़े हुए हैं, इसलिये हम भी बिगड़े ही बने रहें. जब वे सुधरेंगे, तभी ही हम सुधरनेकी कोशिश करेंगे। यह तो ऐसी बात हुई कि-जब दूसरोंके जलते हुए मकानोंकी आग बुझ जायेगी, तभी ही हम अपने जलते हुए मकानको बुझावेंगे। अतः जबसे हमको अपनी भूल किसी प्रामाणिक-हितचिन्तक-व्यक्तिके द्वारा मालुम पड़े, उसी समय अपनी भूल सुधारनी चाहिये, और भूल बतलानेवालेको अपना मित्र एवं शिक्षक गुरु समझना चाहिये। हम अच्छे सदाचारी बनें, यही हमारा कर्तव्य है। हम अच्छे तो सब जग अच्छा, अतः शास्त्रमें कहा है—

'उपानद्--गूढ़पादस्य ननु चर्मावृतेव भूः।'

जब हमने जूते पहिन लिये तो मानो हमारे लिए तमाम-भूमि चर्माच्छन्न होगयी।

## उपसंहार।

इसप्रकार कुछ पण्डोंको सदुपदेश देकर, सिद्ध-नागार्जुन, अम्बिकेश्वर आदिके दर्शन करते हुए श्रीस्वामीजी महाराज अपने आसन पर चले गये। और कुछ महात्मा-लोग भगवतीके मन्दिरमें स्वामीजीके भाषणके लिये, पण्डोंसे कहने लगे, परन्तु वे लोग हाँ या ना कुछ न कह सके, ठीक है 'कृतापराधः स्वयमेव शंकते'। आखिर एक महात्माने जोशमें आकर कहाकि-तुम्हारे यहां कोई पठित-पंडित

है कि-नहीं ? यदि है तो उसे स्वामीजीसे भेंट कराओ, ताकि-शास्त्र-चर्चा हो, इस विषयकी सभी शंकाओंका समाधान हो जाय। परन्तु वहांकी परिस्थिति मैंने ऐसी देखी कि—'मौनं सर्वार्थसाधकम्'। पश्चात् महात्माओंने इधर-उधर भ्रमणकर बहुत कुछ कहा-सुना, परन्तु किसी भी मांसादि-समर्थक-पंडितसे मुलाकात न हुई। ठीक है, छोटं कस्बेमें शास्त्रार्थ-निपुण अच्छा पंडित कहांसे मिले, साधारण-पण्डित तो काशीके विद्वानोंके नाममात्रसे ही भयभीत हो गये होंगे। पश्चात् तीसरे दिन स्वामी जी सहित सभी महात्मा-ज्वालाजीकी यात्रा समाप्त कर मोटरोंके द्वारा कांगड़ा चलपड़े। कांगड़ेकी श्रीविद्येश्वरीदेवीका दर्शन कर चार रोजके बाद भागसूधर्मशाला-नामक हिमालयीय-शीतल स्थानपर सभी महात्मा पहुंच गये।

हरिः ॐ तत्सत्।

## पाषाण-मूर्तिकी चैतन्य-शक्ति।

बम्बई विला-पारलामें स्थानीय-भक्तोंकी सहायतासे संन्यासाश्रम की एवं काशी-विश्वेश्वर-आध्यात्मिक-संस्कृत-विद्यालयकी भी स्थापना हो चुकी थी। उस समय ऐसा सहसा विचार आया कि-संन्यासाश्रममें तात्कालिक कोई न कोई छोटा-सा भी देव-मन्दिर होना चाहिये। बड़े मन्दिर बननेमें-डेढ दो लाखकी धन-राशिकी आवश्यकता होगी, धार्मिक-कार्य शनैः शनैः हुआ करते हैं, और अपना तो प्रायः यति-धर्म-निःस्पृहताके अनुसार अयाचित ही व्रत था। इसलिये प्रथम छोटं-मन्दिरके निर्माणका संकल्प दृढ़ होगया। श्रीकृष्णा-बहिनकी प्रेरणासे एक सेठानीने उसके लिये रुपये दे दिये। छोटा मन्दिर बन गया, जो आज भी संन्यासाश्रममें अवस्थित है। उसमें पंच देवोंकी मूर्तियोंकी भी प्रतिष्ठा होगई। बीचमें भगवान् शंकरके बाण-लिङ्गकी स्थापना की गयी, और सामने महाशक्ति भगवती-पार्वतीकी मूर्ति रक्खी गई। उस समय-वह छोटा-मन्दिर आम्रवृक्षके नीचे होनेके कारण-उसमें प्रतिष्ठित-श्रीशंकरके बाण-लिङ्गका "एकाम्रेश्वर-महादेव" नाम

रक्खा गया, और भगवतीदेवीका नाम रखना प्रायः हम लोग भूल ही गये। उसका ख्याल ही नहीं रहा। शरद्-ऋतुकी एक-रात्रिमें प्रातः ३॥ बजे मुझे ऐसा भव्य-स्वप्न दर्शन रहा कि-मैं प्रति-दिनके नियमानुसार प्रातः नव बजे-स्वाध्यायके बाद मन्दिरमें दर्शन कर रहा हूँ। उस समय-भगवती-पार्वतीका विग्रह (मूर्ति) मेरे समक्ष मंद-हास करता हुआ-बोल रहा है कि-महात्मन्! तू ने शंकरके बाणलिंग का नाम 'एकाम्रेश्वर' महादेव रक्खा, परन्तु मेरा नाम कुछ भी नहीं रक्खा। सुन, मेरा नाम, मैं ही रखती हूँ, मेरा नाम है-क्षेम-कल्याणी देवी। मैं साक्षात् ब्रह्म-स्वरूपिणी हूँ। ऐसा बोलकर भगवतीका वह विग्रह चुप हो गया। भगवतीकी उस मूर्तिका-आश्चर्य-चकित हुआ मैं-दर्शन करता हुआ वहां खड़ा ही हूँ, कि-इतनेमें मेरी आंखें खुल गईं। जाग्रत् में भी मुझे वह भव्य-स्वप्न-दर्शन-सीनेमाके पिक्चरोंकी भांति मेरी आंखोंके सामने अवस्थित हो रहा है और भगवतीकी वह सुन्दर-मूर्ति बोल रही है। ऐसा भास कुछ समय तक मुझे होता रहा। शास्त्रोंके ये वचन प्रामाणिकरूपसे अनुभूत हो गये कि-

गुरौ मानुष-बुद्धिन्तु, मन्त्रे चाक्षर-भावनाम्।
प्रतिमासु शीला--बुद्धिं, कुर्वाणो नरकं व्रजेत्॥

अर्थात्-जो गुरुमें मनुष्य-बुद्धि, मन्त्रमें अक्षर-भावना तथा प्रतिमाओंमें पाषाण बुद्धि रखता है-वह नरक-गामी बनता है। अर्थात् आस्तिक-श्रद्धालुको गुरुमें भगवद्-भाव, मन्त्रमें दिव्य-शक्तिका भाव तथा प्रतिमामें चैतन्य-शक्तिका भाव रखना चाहिये। जो प्रतिमामें जड़भाव रखता है-वह प्रतिमाके दर्शनका एवं अर्चनका अधिकारी नहीं माना जाता।

शौच स्नानके बाद तुरन्त ही मैं नीचे मन्दिरमें आ गया, और जाग्रतमें मैंने भगवतीकी मूर्तिका दर्शन किया, उस समय उस मूर्तिमें मानो दिव्यता ही प्रकट हो रही है, और उस समय पूजारी स्वामी हरिशंकर

भारती आरती कर रहा था—आरतीके बाद मैंने पूजारी को कहा कि–भगवतीने स्वप्नमें दिव्य-दर्शन देकर अपना क्षेम-कल्याणी ऐसा नाम बतलाया है। कितना सुन्दर नाम है–जैसी यह महाशक्ति–भगवती देवी सुन्दर है–वैसा उसका नाम भी सुन्दर है।

क्षेमञ्च कल्याणञ्च (अभ्युदय-निःश्रेयसोभयरूपं) प्रवर्तते यस्याः सा क्षेमकल्याणी देवी। अर्थात् यह भगवती अपने विनम्र–आस्तिक–भक्तों को क्षेमका एवं कल्याणका प्रदान कर धन्य एवं कृतार्थ बना देती है। इसलिये इस भगवतीका यह नाम मन्दिरके द्वारके ऊपर लिखवा दो, और सर्वत्र क्षेमकल्याणीदेवीके इस दिव्य–सुन्दर नामकी घोषणा कर दो. उस समय संस्कृत–विद्यालयके निर्वाहके लिए तिथि–फंडके रुपयोंसे संन्यासाश्रममें ही एक नवीन–बिल्डींग बन रही थी। उसके नामकरणके लिए सेठ मनोहरभाई ने कहा कि—इसका क्या नाम रक्खा जाय ? क्या तिथि–फंड-सदन रक्खा जाय कि–और कुछ ? हमने हंसकर कहा कि–इस मन्दिरकी भगवतीका ही नाम रक्खो–जो स्वप्नमें दर्शन देकर अपना नाम आप ही स्वयं बतला गयी थी, और उसका 'क्षेम–कल्याणीसदन' ऐसा नाम रक्खा गया। तबसे भगवती की स्तुति रूपसे ये दो श्लोक प्रतिदिन बोले जाने लगे—

'शरण्ये वरेण्ये ! सुकारुण्यपूर्णे ! हिरण्योदराद्यैरगम्येऽतिपुण्ये !।
भवारण्य-भीतं च मां पाहि भद्रे ! नमस्ते नमस्ते नमस्ते भवानि !॥

क्षेम-कल्याणि ! भूतार्ति-हारिणि ! ब्रह्म-वादिनि !।
सत्यानन्द—स्वरूपिण्यै मातस्तुभ्यं नमो नमः ॥

हे शरण रखने में अतिनिपुण ! अत्युत्तम देवि ! जो तू पवित्र करुणासे पूर्ण है–एवं हिरण्यगर्भ आदि बड़े बड़े देवोंके द्वारा भी तेरा महनीय-स्वरूप अगम्य है–जो अति पुण्यपुञ्ज रूपा है। ऐसी तू हे भद्रे ! संसाररूप अरण्यके दुःखोंके भयसे ग्रस्त हुए–मेरी रक्षा कर। हे भवानि भगवति ! तुझे नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है। हे क्षेम-कल्याणि

देवि ! हे ब्रह्मवादिनि ! 'मैं ब्रह्मस्वरूपिणी हूँ' ऐसा स्वयं अपने मुखसे बोलने वाली और भूतप्राणियोंके विविध-दुःखों का अपहरण करने वाली-पूजनीया-माता सत्य-आनन्द-स्वरूपिणी तुझे मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।

पुनः क्षेमकल्याणी भगवतीसे-आचार्य-शंकर-प्रणीत आनन्द लहरी के इस श्लोकसे प्रार्थना की कि—

'प्रभूता भक्तिस्ते यदपि न ममालोलमनसः,
त्वया तु श्रीमत्या सदयमवलोक्योऽहमधुना।
पयोदः पानीयं दिशति मधुरं चातकमुखे,
भृशं शङ्के कै र्वा विधिभिरनुनीता मम मतिः॥

अर्थात् मेरा मन चञ्चल है, इसलिये यद्यपि मैंने आपकी प्रचुर भक्ति नहीं की है, तथापि आप-श्रीमतीको इस समय मुझपर अवश्य ही दया दृष्टि करनी चाहिये। चातक चाहे प्रेम करे या न करे, पर दयालु मेघ तो उसके मुखमें मधुर-जल गिराता ही है, अथवा मुझे बड़ी शंका हो रही है कि-मेरी बुद्धि किन विधियोंसे आपमें अनुनीत हो, एकतान बने।

## बद्रिकाश्रम की महिमा।

बद्रिकाश्रमका पुनीत-शान्त-स्थल पुराण प्रसिद्ध है। रेवाखण्ड एवं नर्मदापुराणमें इसके विस्तृत-महत्त्वका वर्णन है। स्कन्द-पुराणके रेवाखण्डमें कहा है कि—

'ततो गच्छेत राजेन्द्र ! बदर्याश्रममुत्तमम्।
क्रोशान्तरे नन्दितीर्थात्, तीर्थं वै तदवस्थितम्॥

मार्कण्डेय-ऋषि महाराजा-युधिष्ठिरसे कहते हैं-हे राजेन्द्र ! नन्दिकेश्वर ( नन्देरिया-ग्रामके ) तीर्थसे एक-कोशके भीतरमें अवस्थित बदर्याश्रम (बद्रिकाश्रम) नामके उत्तम-तीर्थमें जाना चाहिये। इसप्रकार

अनेक-श्लोकोंके द्वारा बदर्याश्रमका महिमाशाली निरूपण किया है। अतएव इस बदर्याश्रमके पावन-नाम का समुल्लेख-चिरकालतक रखनेके अभिप्रायसे ही इसके समीपस्थ ग्रामका नाम 'बदरियापुर' रक्खा गया है। जिसका इस समय आदिम-'ब' शब्दका लोप करके लघुताकी दृष्टि से या उच्चारणकी क्लिष्टता होने से लोग 'दरियापुर कहते हैं। जैसे गुजराती लोग मातृवाचक 'अम्बा' शब्दका उच्चारण आदिके 'अम्' शब्द का लोप करके 'बा' मात्रसे करते हैं' तद्वत्।

नर्मदापुराणमें इस पवित्र-स्थलका पता एवं महत्त्व इस प्रकार बतलाया है कि–

चण्डिकाव्यासयो र्मध्ये, चोत्तरस्मिन् तटे स्थिताम्।
यत्रास्ति नर्मदा पुण्या, नारायणतपस्स्थलीम् ॥
उत्तरां बदरीं गन्तुमशक्तः—-चेद् वरानने ! ।
दक्षिणां बदरीं गच्छेत्, तत्समं पुण्यमाप्नुयात् ॥

भगवान् श्रीशंकर भगवती-पार्वतीसे कहते हैं-हे वरानने! सुन्दर-मुखवाली देवी! यदि कोई उत्तराखण्ड-हिमालयके दुर्गम-बद्रिकाश्रममें जानेके लिये अशक्त है, तो वह इस दक्षिण-खण्डके सुगम-बद्रिकाश्रममें जावे तो उसके समान ही वह पुण्यलाभ प्राप्त करेगा। दक्षिणका बद्रिकाश्रम चण्डीपुर (चांदोद) एवं व्यासक्षेत्रके मध्यमें है, जहां पवित्र—नर्मदा बहती है—इसके उत्तर—तटमें अवस्थित है—जो नारायणकी तपः स्थली है, अतः इस पावन-तीर्थमें अवश्य जाकर प्रशस्त-पुण्यलाभ प्राप्त करना चाहिये।

'सौभाग्यशालि तीर्थं यत्, बद्रिनारायणेश्वरम्।
पावनं रमणीयञ्च, ज्ञानमोक्षप्रदं नृप ! ॥
तत्र गत्वा तथा स्नात्वा, यः पूजयति शंकरम्।
पापनाशं तथा भक्तिं, विन्द्यात् यत्र जनोत्तमः ॥'

हे नृप! यह-बद्रिकाश्रम-तीर्थ, सौभाग्यशाली, पावन, रमणीय, एवं ज्ञान तथा मोक्षका दाता है। जहां बद्रिनारायणेश्वर साक्षात् बिराजमान रहते हैं। वहां जाकर तथा पवित्र-नर्मदामें स्नान करके जो श्रीशंकर-भगवान्का श्रद्धाके साथ पूजन करता है, वह उत्तम-जन अपने समस्त-पापों का नाश करके भगवान्की कल्याणकारी-भक्तिको प्राप्त करता है।

## वैकुण्ठवासी–स्वामी–रामकृष्णानन्दजी।

इस बद्रिकाश्रमका स्थल बहुत समयसे प्रायः लुप्त-सा होगया था! इसका पुनरुद्धार करनेका संकल्प ब्रह्मलीन स्वामी रामकृष्णानन्दजीके हृदयमें खड़ाहुआ। इसलिए उन्होंने बद्रिनारायण-भगवान्का मन्दिर बनानेके लिए इधर-उधरसे आस-पासके अनेक-ग्रामोंमें भ्रमणकर कुछ ४-५ (चार-पांच) हजारकी सहायता प्राप्त करके इसका पाया (नीव) बना दिया। पश्चात् विशेष सहायता न मिलनेके कारण दो-तीन वर्ष तक वैसा ही पड़ा रहा। स्वामी रामकृष्णानन्दजी अच्छे वीतराग-तपस्वी महात्मा थे। नर्मदा-तटके इस पावन-एकान्त-शान्त-तीर्थमें रहकर वे केवल उबाला हुआ मुंग खाकर तथा थोडासा दूध पीकर श्रीनारायणकी भक्ति किया करते थे। श्रीनारायणमें ही प्रौढरति बांधकर अपनी मतिको लगाये रखते थे, एवं श्रीनारायणको ही अपनी परमगति मानते थे। 'श्री नारायण! हे नारायण! हा नारायण! जय नारायण! गेय नारायण! ध्येय-नारायण! प्रेयः नारायण! श्रेयः' नारायण! इत्यादि श्रीनारायणकी पावन-नामावलिकी धुन हरदम लगाया करते थे।

अतएव वे श्रीनारायणमन्त्रकी महिमा इसप्रकार बतलाते थे कि-

'संसारोत्तारमन्त्रं समुपचिततमःसङ्घ---निर्याणमन्त्रम्।
सर्वैश्वर्यैकमन्त्रं व्यसनभुजगसंदष्टसंत्राण---मन्त्रम्॥
शत्रुच्छेदैकमन्त्रं, तमिममुपनिषद्वाक्यसंस्तुत्यमन्त्रम्।
जिह्वे! नारायणाख्यं जप जप सततं जन्मसाफल्यमन्त्रम्॥

'नारायण' ऐसा पावन-नाम, संसारसे तारनेवाला मन्त्र है,

ॐ नमः शिवाय ।

अनन्तानन्द–बोधाम्बुनिधिमद्भुतविक्रमम् ।
अम्बिकापतिमीशानमनीशं प्रणमाम्यहम् ॥

काश्मीर--अमरनाथ--बरफका-लिंग-दर्शन

नमः शिवाय साम्बाय साक्षिणे प्रत्यगात्मने ।
पशूनां पतये तुभ्यं क्षेत्राणां पतये नमः ॥
ऐशमाद्यन्त–निर्मुक्तमति—शोभनमादरात् ।
नमामि विग्रहं साम्बं संसारविषभेषजम् ॥

ॐ साम्बाय शिवाय नमः ।

शरणागतदीनार्त—परित्राणपरायणे ! ।
सर्वस्यार्तिहरे ! देवि ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥

ॐ नमो देव्यै महादेव्यै, शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै, नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥
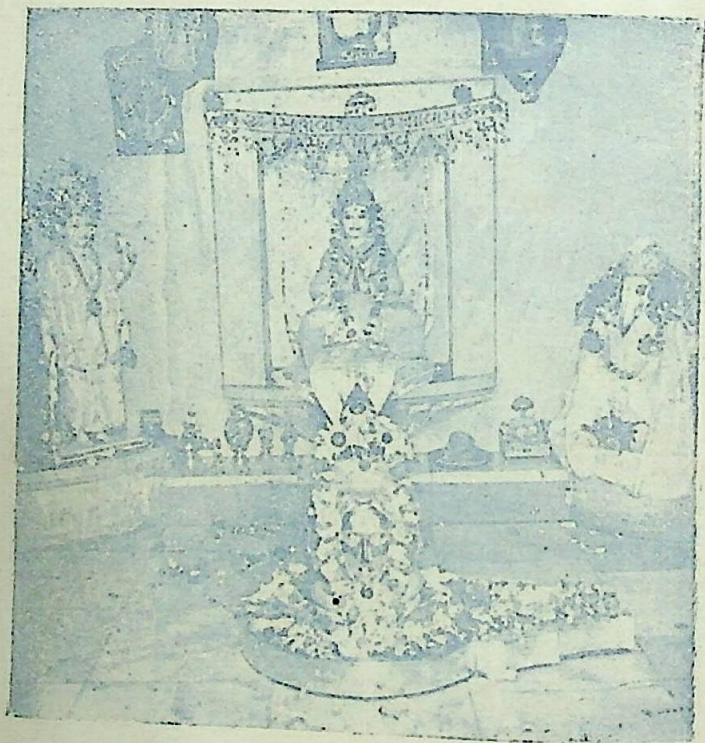
श्रीक्षेमकल्याणीमाता तथा एकाम्रेश्वरमहादेव-
संन्यासाश्रम--विला--पारला--बम्बई ।

तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः

कनखल–सुरतगिरि–बंगला–गिरीशानन्दाश्रमके

माननीय–कोठारीजी महाराज—
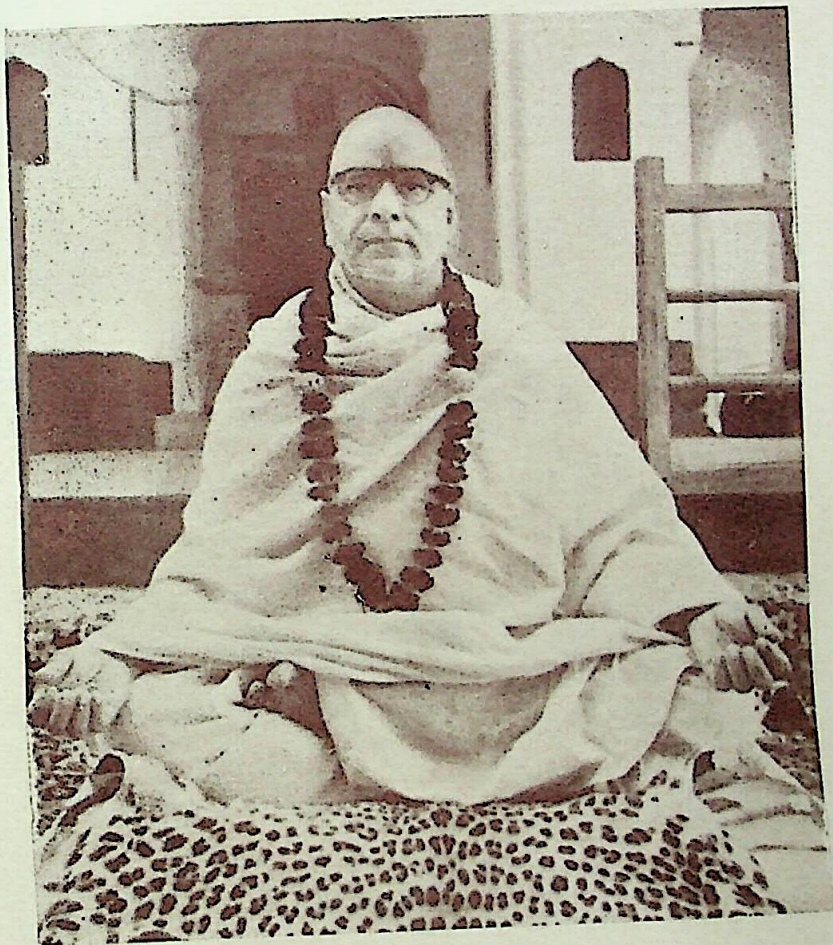
श्रद्धेय १०८ स्वामी कैवल्यानन्द–सरस्वती

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

बदरीनाथमूर्त्तिं वै दृग्भ्यां पश्यति यो जनः ।
तेन तप्तं तपस्तीव्रं, दत्ता तेन धराऽखिला ॥
चरणानाञ्च साफल्यं गच्छेद्यो बदर्यालयम् ।
नेत्रयोश्चैव साफल्यं कुर्याच्छ्रीशस्य दर्शनम् ॥
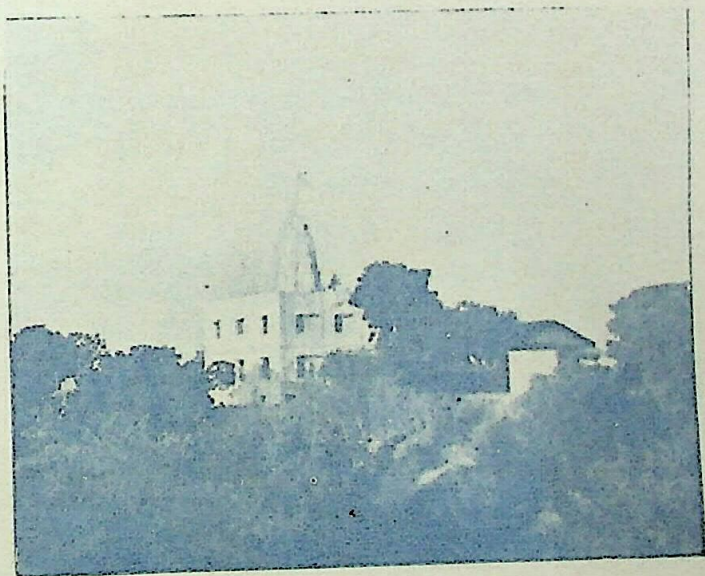
बद्रिकाश्रम–बद्रिनारायण–मन्दिर पृष्ठ–भागका दृश्य ।

ॐ नमो नारायणाय ।

पवन-मन्द सुगन्ध-शीतल, भव्यमंदिर–शोभितम् ।
निकट-रेवा बहत निर्मल श्रीबद्रिनाथ-विश्वंभरम् ।।
यत्र साक्षात्सरिच्छेष्ठा, रेवा पापौघनाशिनी ।
विष्णोश्चाप्यत्र सान्निध्यं बद्रिनाथालये वरे ।।
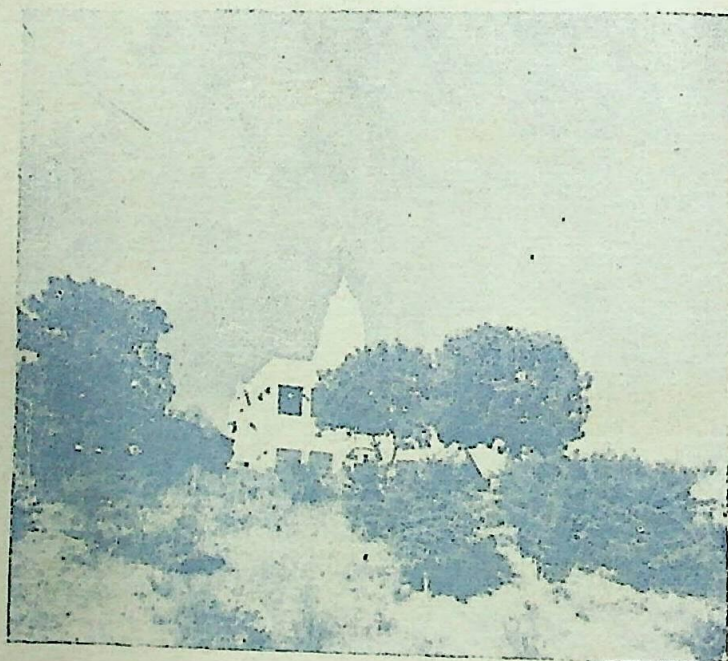
बद्रिकाश्रम-बद्रिनारायण-मन्दिर सन्मुख–वृक्षाच्छन्न–दृश्य–

अनादिकालसे खूब ही बढ़ा—चढ़ा—अज्ञान एवं मिथ्याज्ञानरूप—अंधकारके समुदायको भगानेवाला मन्त्र है, शान्ति, आनन्द, निर्भयता आदि समस्त—ईश्वरीय—शक्तिओंका एकमात्र प्रदाता मन्त्र है, विषयासक्ति, ममता, अभिमान आदि विविध व्यसनरूप—भुजंगोंके वेदनामय दंशोंसे रक्षाकरनेवाला मन्त्र है, कामादि—शत्रुओंका छेदन करनेवाला एकमात्र मन्त्र है, उपनिषत्—वाक्योंसे संस्तूयमान—मन्त्र है, एवं मानव—जन्मकी सफलता प्रदान करनेवाला मन्त्र है—उस प्रसिद्ध इस नारायण मन्त्रका हे जिह्वे! तू निरन्तर जप कर, जप कर।

तथा वे श्रीनारायणके महत्त्वके बोधक इस प्रकारके अनेक-श्लोक गुन-गुनाते रहते थे—

'भो कृष्णाच्युत ! भो कृपालय ! हरे ! भो पाण्डवानां सखे !,
क्वासि ? क्वासि ? सुयोधनादपहृतां भो रक्ष मामातुराम्।
इत्युक्तोऽक्षयवस्त्र------संभृततनुं योऽपालयद् द्रौपदीम्,
आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः॥
यत्पादाब्जनखोदकं त्रिजगतां पापौघविध्वंसनं,
यन्नामामृतपूरकं च पिबतां संसारसंन्तारकम्।
पाषाणोऽपि यदङ्घ्रिपद्मरजसा शापान्मुनेर्मोचितः,
आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः॥

अर्थात् हे कृष्ण ! हे अच्युत ! हे कृपालो ! हे हरे ! हे पाण्डव-सखे ! तुम कहां हो ? कहां हो ? दुर्योधनद्वारा लुटी गयी मुझ आतुरा (दुःखिनी) की रक्षा करो ! रक्षा करो'—इसप्रकार प्रार्थना करनेपर जिसने अक्षयवस्त्रसे द्रौपदीका शरीर ढक कर उसकी रक्षा की, * वह

* अध्यात्म—पक्षमें साधक—भक्तकी बुद्धिका नाम द्रौपदी है, वह कामादि आसुरीसम्पद्रूप—कौरवोंसे लुटी जा रही है। साधक—भक्त उसकी रक्षाके लिए भगवान्से प्रार्थना करता है, भक्तवत्सल—भगवान् तुरन्त ही दैवीसम्पद्रूप—अक्षय-वस्त्रसे बुद्धि—द्रौपदीका विग्रह ढककर उसकी रक्षा करता है।

दुःखियोंका उद्धार करनेमें तत्पर भगवान् नारायण मेरी गति है। जिनके चरणकमलोंके नखोंकी धोवन-श्रीगंगाजी त्रिलोकीके पापसमूहको ध्वंस करती रहती है, जिनका नामामृतसमूह पान करने वालोंको संसार-सागरसे पार कर देता है, तथा जिनके पादपद्मोंकी रजसे पाषाण भी मुनिशापसे मुक्त होगया, वे दीन-रक्षक भगवान्-नारायण ही मेरी एकमात्र गति हैं।

वाग्देवी यन्मुखसरसिजे, यत्पदाब्जे स्थिता श्रीः,
ह्लादिन्याऽन्तर्हृदि जलरुहे, संविदाऽऽलिङ्गितो यः।
ब्रह्मेशानामरपतिमुखैः यः सुरैः वंदिताङ्घ्रिः,
तं प्रत्यञ्चं श्रुतिमतिमतं नौमि वैकुण्ठनाथम्॥
यत्पादाब्जस्मृतिरभयदा शान्तिदान्त्यादिहेतुः,
यद्धाम्नेदं स्फुरति सकलं कल्पितं यत्र सत्ये।
यं विश्वं सम्प्रविशति लये सर्वशक्तिप्रतिष्ठं,
तं श्रीकान्तं स्वपदरतिदं संश्रये विष्णुमीशम्॥
यस्यापाङ्गनिरीक्षणाद्भवरतिं भीतिप्रदामुज्झहत्,
त्रय्यन्तार्थविमर्शनाद् गतमहामायो भवेत् साधकः।
तं शुद्धाद्वयबुद्धमुक्तमतुलं कारुण्यपूर्णं हरिम्,
पूर्णानन्दमहाप्रभावमनिशं ध्यायामि नारायणम्॥

जिसके मुखारविन्दमें वाग्देवी-भगवती-शारदा एवं जिसके पादारविन्दमें भगवती महालक्ष्मी बिराजमान है, जो अपने हृदय-कमलके भीतर आह्लादिनी-शक्तिरूप संवित् (चैतन्य-ज्ञान) से सदा आलिङ्गित (संयुक्त) रहता है। ब्रह्मा, शंकर, इन्द्र, प्रभृतिदेवोंके द्वारा जिसका चरण अभिवन्दित होता है, एवं जो श्रुति एवं विशुद्ध-बुद्धिके द्वारा या श्रवण-मननके द्वारा जाना जाता है-उस प्रत्यगात्मारूप-वैकुण्ठनाथ-भगवान्-श्रीनारायणको मैं अहर्निश नमस्कार करता हूँ।

जिसके पाद-पद्मकी स्मृति, अभय प्रदान करती है, एवं शम, दमादि साधनोंकी कारणभूत होजाती है। जिसके चैतन्यप्रकाश द्वारा ही इस निखिल-चराचर जगत्‌की स्फूर्ति (भान) होती है। जिस-सत्य-अधिष्ठानमें यह नामरूपात्मकविश्व कल्पित (अध्यारोपित) होता है। लयके समय जिसमें यह विश्व सम्यक् प्रविष्ट होजाता है, एवं जिसमें निखिल-शक्तियाँ प्रतिष्ठित रहती हैं, तथा जो अपने भक्तोंको अपने चरणोंकी भक्तिका दान देता है, उस श्रीके प्रियतम-सर्वेश्वर-भगवान् विष्णु-नारायणका मैं आश्रय (शरण) ग्रहण करता हूँ। जिसके नेत्र-कोणके कृपामय-निरीक्षणसे ही साधक-भक्त भयप्रद-संसारप्रीतिका परित्याग करता हुआ वेदान्तके प्रत्यगभिन्न-अद्वयब्रह्मके अनुसंधान द्वारा महा-मायासे भी विमुक्त होजाता है। उस तुलना (उपमा) रहित, शुद्ध, अद्वय, बुद्ध, मुक्त; करुणासे परिपूर्ण, पूर्णानन्दरूप-महाप्रभावसे संयुक्त श्रीहरि-नारायणका सदा मैं ध्यान करता हूँ।

स्वामी रामकृष्णानन्दजीका यह प्रामाणिक-मत था कि-एकमात्र भगवान्-सर्वात्मा श्रीनारायणकी भक्ति ही संसार-सागरसे पार लगा देती है। अतः 'कलौ भक्तिः कलौ भक्तिः, भक्त्या कृष्णः पुरः स्थितः।' अर्थात् कलियुगमें एकमात्र भक्ति ही कल्याणकारिणी है, भक्ति द्वारा श्रीकृष्ण-नारायण समक्ष ही प्रकट हो जाता है, ऐसी भक्तिकी स्तुत्य-महिमा है। इसलिये हमें अपने विशुद्ध-हृदयमें एकमात्र भगवद्भक्तिरूप वृक्षका रोपणकर उसे हरदम बढाते रहना चाहिये, वृक्ष जब परिपुष्ट होजाता है, तब उसमें फल आपही आप लग जाते हैं। फल-निर्माणके लिए हमें पृथक् प्रयत्न नहीं करना पडता। तद्वत् भक्ति जब परिपुष्ट होजाती है, तब तद्द्वारा ज्ञानरूपी फल अनायास ही मिल जाता है, उसके लिए विशेष प्रयत्न करना नहीं पडता। इसलिए वे कहते थे कि-

भवजलधिमगाधं दुस्तरं निस्तरयेम्,
कथमहमिति चेतो मा स्म गाः कातरत्वम्।

सरसिजदृशि देवे तावकी भक्तिरेका,
नरकभिदि निषण्णा तारयिष्यत्यवश्यम् ॥

अर्थात् अगाध-संसार-सागरसे तरकर मैं कैसे पार जाऊँगा ? ऐसा विचार कर हे चित्त ! तू कातर (भयभीत) मत होना। क्योंकि-यदि-नरकासुरके विध्वंसक-पुण्डरीकाक्ष-भगवान् श्रीनारायणदेवमें तेरी भक्तिकी अचल प्रतिष्ठा है तो वही तुझे अवश्य ही संसार-सागरसे तार देगी, ऐसा दृढ विश्वास रख।

संसार-सागरमें डूबने वालोंके लिए एकमात्र भगवान् श्रीनारायण ही दृढ़ नौका है, उसका जो आश्रय लेता है, वह इस भवजलधिसे पार हो ही जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं, इस लिये वे कहते थे कि—

भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां,
सुतदुहितृकलत्रत्राणभारावृतानाम् ।
विषमविषयतोये, मज्जतामप्लवानां,
भवति शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम् ॥

जो इस भवार्णवमें पडे हुए हैं, सुख-दुःखादि द्वन्द्वरूप-प्रचण्ड-पवनके आघातोंसे व्यथित हैं, पुत्र, पुत्री, स्त्रीकी रक्षाके भारसे आवृत हैं, शब्दादि-विषयरूप-विषम-जलमें डूब रहे हैं, एवं जिन्हें अन्य कोई तारनेवाला-प्लव (छोटी नौका) भी नहीं मिल रहा है, ऐसे मानवोंके लिए एकमात्र भगवान् नारायण-विष्णु ही रक्षक पोत (बड़ी-दृढ़ नौका) बन जाता है।

इसलिये हे इष्टदेव ! भगवन् ! नारायण ! तू मुझे एकमात्र तेरी पावन-नामभक्ति प्रदान कर, और मैं रात्रि-दिन प्रतिश्वास भक्तिपूर्ण हृदयसे तेरे विमल-श्रद्धेय-नामोंके ही गीत गाया करुँ, ऐसी कृपाकर—

श्रीवल्लभेति वरदेति दयापरेति,
भक्तप्रियेति भवलुण्ठनकोविदेति ।

नाथेति नागशयनेति जगन्निवासे—
त्यालापिनं प्रतिदिनं कुरु मां मुकुन्द !।।

हे मुकुन्द-प्रभो !-हे श्रीवल्लभ ! हे वरद ! हे दयालो ! हे भक्त-प्रिय ! हे भवभयके भगानेमें प्रवीण ! हे नाथ ! हे अनन्त-शेषशयन ! हे जगन्निवास ! इसप्रकारके तेरे नामोंका प्रतिदिन-आलाप करनेवाला मुझे बना।

यह शरीर, नेत्र, जिह्वा, बुद्धि आदि कार्य-करणका समुदाय श्रीहरिके सेवनके लिए ही हमें मिला है, उसके बिना यह सब व्यर्थ है—भाररूप है। इसलिए वे कहते थे कि—

'यद्विष्णुप्रणिपातधूलिधवलं, तद्वर्ष्म तद्वै शिरः,
ते नेत्रे तमसोज्झिते सुरुचिरे, याभ्यां हरि र्दृश्यते।
सा बुद्धि र्विमलेन्दुशङ्खधवला, या माधवध्यायिनी,
सा जिह्वाऽमृतवर्षिणी प्रतिपदं, या स्तौति नारायणम् ।।'

अर्थात् वही वास्तवमें शरीर एवं वही शिर है—जो विष्णु भगवान्के दण्डवत् प्रणिपात करते समय मंदिरकी धूलिसे धवल होजाता हो। वे ही यथार्थमें नेत्र माने जाते हैं—जो अज्ञानान्धकारसे रहित होकर निर्मल-ज्ञान-ज्योतिसे युक्त हुए हों एवं जिनके द्वारा सर्वत्र सतत श्रीहरिका दर्शन होता रहता हो। वही निर्मल-चन्द्र एवं शंखके समान धवल (शुक्ल) विशुद्ध-बुद्धि है, जो निरन्तर श्रीमाधव-नारायणका ध्यान करती रहती हो। एवं वही अमृत-वर्षिणी-जिह्वा मानी जाती है—जो प्रतिक्षण श्रीनारायणकी स्तुति करती रहती हो।

अतएव स्वामी रामकृष्णानन्दजी श्रीनारायणकी पावन-भक्तिके वशीभूत हुए-श्रीनारायणके इस पुराण-प्रसिद्ध प्राचीन-तीर्थके समुद्धारके लिए कटिबद्ध होगये थे। इसकी सहायताके लिए वे एकबार मेरे समीप बम्बईमें भी आये थे। परन्तु वे अपने जीवनमें इसको पूरा नहीं कर

सके, इसमें भी वे श्रीनारायणकी ही वैसी-इच्छा समझकर आनन्द-प्रसन्न रहते थे।

अन्तिम-जीवनमें उनको ऐसा स्पष्ट-भास हुआ कि-'श्रीनारायण मुझे हिमालयके अतिधन्य-बद्रिकाश्रममें बुला रहे हैं, और प्रसन्नताके साथ कह रहे हैं-कि—तू यहां आकर अपने विनश्वर-शरीरको छोड़ और मेरे अद्वयानन्द-पूर्ण शाश्वत-पावन—धामको प्राप्त कर।' इस श्रीनारायणके शुभादेशके अनुसार वे नर्मदातटसे गंगातट-हरिद्वार आये। यहां आकर प्रेमसे 'ॐ नमो नारायणाय' कह कर मुझसे कहने लगे—भगवन्! मेरे लिए श्रीनारायणका ऐसा आदेश हुआ है, इसलिये मैं बद्रिनारायण जारहा हूँ। और मैं उस नर्मदातटके बद्रिकाश्रमको आपके पुनीत-चरणोंमें समर्पण करता हूँ। अतः आपके शुभनामका पक्का-विल बनाकर समीपके दरियापुर एवं बिथली-ग्रामके मुख्य-गृहस्थों-के सुपुर्द कर आया हूँ। अतः आप कृपा करके उस बद्रिकाश्रमको संभालें, और श्रीनारायणके मन्दिरको पूर्ण बनाकरके उसमें श्रीनारायण-भगवान्के दिव्य-विग्रहकी प्रतिष्ठा करें।' यह आप श्रद्धेय-महानुभावके प्रति मुझ अकिञ्चन-भिक्षुका आदेश न समझकर विनम्र-विनय-शाली प्रार्थना ही समझनी चाहिये।

उससमय मैंने उपेक्षाके स्वरमें कहा—अरे भाई! प्रिय-महात्मन्! यह सब झंझट हमसे नहीं होनेका। मन्दिर एवं आश्रमके निर्माणके लिए प्रभूत-धनकी आवश्यकता होती है, उसके लिए धनवानोंसे साक्षात् या परंपरया कहना पडता है। और मुझे तो धर्मके लिए भी मांगना और मरना बराबर ही मालूम पडता है, इसलिए आप कृपा करें, किसी अन्य अधिकारी-महात्माको इसे समर्पित करें, मुझे नहीं चाहिये।

तब स्वामी रामकृष्णानन्दजी, श्रद्धाके वशीभूत हुए-नम्रताके साथ कहने लगे कि-कृपानिधान! भगवन्! मेरी तो आपके श्रीचरणोंमें ही पुनीत-श्रद्धा है। आपको मैं मेरे इष्टदेव-आराध्य-प्रभु श्रीनारायणका

ही अभिन्न स्वरूप मानता हूँ। आप सर्व-समर्थ हैं, आपके लिए कोई भी कठिन कार्य नहीं। नाटकीय-खेलकी तरह आप अपनी पावन-निष्काम-दृष्टि द्वारा ही मन्दिर एवं आश्रम आदिका निर्माण कर सकते हैं। और श्रीनारायणकी शुभ-प्रेरणासे मुझे आप पर पूरा विश्वास है कि-मेरा क्या ? किन्तु श्रीनारायणका ही उस पुनीत-तीर्थके समुद्धारका वह स्तुत्य-कार्य आपके यशस्वी कर-कमलों द्वारा ही संपन्न होगा, इसलिए भगवन् ! मेरी इस विनम्र-प्रार्थनाको अवश्य ही स्वीकार करें।

मैंने आश्वासनके स्वरमें कहा—आप जल्द-बाजी मत करें, अभी आपके शरीरकी आयु ही क्या है ? मुश्किलसे ४०-४५ की होगी। अभी आपका शरीर थोडे ही छूटा जा रहा है। शनैः शनैः आपका पुनीत-संकल्प पूर्ण हो ही जायगा। धैर्य रक्खें, आप बद्रिकेदार-की यात्रा करके वापस आयें, पश्चात् देखा जायगा। पुनः मन्दिर निर्माणके लिए प्रयत्न किया जायगा। मेरेसे जो हो सकेगी, वह उचित-सहायता अवश्य दुंगा, एवं दिलाऊँगा। निश्चय रखना चाहिये कि—यह श्रीनारायणका ही कार्य है, वही पूरा करेगा, भगवान्के लिए कुछ भी अशक्य नहीं, अपने तो केवल निमित्तमात्र हैं।

पुनः स्वामी रामकृष्णानन्दजीने निश्चयके स्वरमें कहा—भगवन् ! आचार्य देव ! मैं वहाँसे वापस लौटकर आने वाला ही नहीं हूँ। तथापि यदि आऊँगा, तो जैसा आप कहेंगे; वैसा होगा। नहीं तो वह आश्रम आपके श्रीचरणोंमें समर्पित होगया। आप चाहें, तो मन्दिर बनायें, या न बनायें, आप पर मैं भार नहीं डालता। तथापि मेरा अटल-विश्वास है कि-आप महानुभावके द्वारा ही वह भगवान् का कार्य पूर्ण होगा। श्रीभगवान् आपको ही निमित्त बनाना चाहते हैं। उस स्थलपर एक-बड़ी-सी कुटीर बनी हुई है, प्रतिवर्ष घासका ४००-५०० रु० आता है। आपकी तरफसे वहाँ कोई न कोई महात्मा पड़ा रहेगा। और पावन तीर्थके एकान्त-शान्त-रमणीय स्थलका स्नान एवं भजनके द्वारा लाभ उठायेगा। अच्छा-महाराज ! आपश्री अनुज्ञा एवं शुभाशीर्वाद दीजिये,

मैं बद्रि-केदार जा रहा हूँ, सादर सप्रेम ॐ नमो नारायणाय ।

ऐसा कहकर श्रद्धाभक्तिपूर्वक साष्टांग-नमस्कार करके स्वामी रामकृष्णानन्दजी बद्रि-केदार चले गये । और हम चातुर्मासके लिए-यहाँ हरिद्वारमें विशेष-गरमी होनेके कारण-ज्येष्ठ-मासमें ही बम्बई-पारला आगये । भाद्रमासमें पता चला कि-स्वामी रामकृष्णानन्दजीका बद्रि-नारायणमें ही शरीर छूट गया है, और किसी महात्माके द्वारा एवं वहांके सरकारी अधिकारीके द्वारा भी प्रामाणिकरूपसे ऐसा ज्ञात हुआ । उनकी पुस्तकें आदिसे भी निश्चय होगया कि-वहाँ शरीर-छोड़ने वाला वही नर्मदातट वासी-गुजराती स्वामी रामकृष्णानन्द जी ही था ।

दीपमालाके बाद बम्बईसे हम नर्मदातट गये । वहां जाकर बड़ा-विशाल ५०-६० विघाका एरियावाला-बद्रिकाश्रम देखा । एकान्त-शान्त-जंगलका—नर्मदातट-विभूषित-रमणीय-पवित्रस्थल देखकर चित्त आनन्दित होगया । उस स्थलसे दोनों तरफकी नर्मदा-मैयाकी दिव्य-पावन-धाराएँ-उत्तर-पूर्वमें करनालीसे आगे तक एवं दक्षिणमें व्यास क्षेत्रसे भी आगे तक-दीखाई पड़ने लगीं । वहां ब्रह्मलीन स्वामी राम-कृष्णानन्दजीका विधिवत् भण्डारा किया । सैंकड़ोंकी तादादमें चांदोद करनाली-व्यास आदि अनेक-स्थलोंसे महात्मा लोग प्रसाद पाने आये । हर ! नर्मदे ! नमः पार्वतीपतये, ॐ नमो नारायणाय, की पावन ध्वनियाँ चारों तरफसे सुनाई पड़ने लगीं । दरियापुर, बिथली आदि ग्रामोंके भक्त-जनोंने भी अच्छी श्रद्धा-भक्ति दीखाई । और प्रार्थना किया कि-भगवन् ! स्वामी रामकृष्णानन्दजीका शुभ-संकल्प पूर्ण कीजिये । मैंने कहा-इसके लिए मैंने स्वामी रामकृष्णानन्दजीको वचन नहीं दिया, वह श्रद्धाके वशीभूत हुआ जबरदस्तीसे मुझे यह आश्रम समर्पित कर गया है । अब देखते हैं-श्रीनारायणकी तथा श्रीनर्मदा मैया की क्या इच्छा होती है ? । वही होगा, जो भगवान् चाहेंगे । मनुष्यकी अपनी चाहके अनुसार जगत्में कुछ भी कार्य नहीं होता । हमें तो उसकी इच्छामें ही आनन्द-प्रसन्न रहना चाहिये । पश्चात् वहाँ

में ५-७ रोज रहकर व्यास-अनसूया-आदि अनेक द्रष्टव्य-स्थलोंका निरीक्षण कर हरिद्वार आ गया।

## नर्मदा-मैयाका दिव्य-दर्शन एवं पुनीत-आदेश।

मैंने वहां स्वामी पुरुषोत्तमानन्दजीको रहनेके लिए छोड़ दिया। और वह वहां आनन्दसे रहने लगा। बीचमें ३ वर्षके बाद भी मैं एकवार-वहाँ हो आया था। पश्चात् ५ वर्ष हो गये, नर्मदा-तट जानेका अनुकूल-अवसर ही नहीं मिला। स्वामी पुरुषोत्तमानन्दजी बार बार आग्रह करने लगा कि-एक बार तो यहां आवो, और नर्मदा-स्नान कर जाओ, बहुत समय हो गया, दरियापुर-एवं बिथली ग्रामके अनेक-भक्तगण बार-बार मुझे टोकते हैं कि-तुम श्रीमण्डलेश्वर-महाराजको क्यों बुलाता नहीं ?, अतः कृपा करके यहां अवश्य पधारियेगा। उसके आग्रहका सम्मान कर विक्रमसंवत् २०१०) में दीप-मालाके बाद बम्बईसे मैं नर्मदातट-बद्रिकाश्रम गया। एकरोज सायं स्वामी पुरुषोत्तमानन्दजी नम्रतासे कहने लगा-महाराज ! बद्रिनारायणका मन्दिर बनवा दो न ? ग्रामोंके भक्त लोग भी कहते हैं कि-मण्डलेश्वर-महाराज मन्दिर क्यों नहीं बनवाते ? मैंने उसे डाटते हुए कहा—'अरे ! तू तो बड़ा पागल-जैसा है, मन्दिर कहांसे बनायें, उसके लिए कितनी ढेरकी ढेर ठनाठन चाहिये, कहांसे लावें, और कौन दे ?। चुप-चाप यहां शान्तिसे पड़ा रह, और घासके चारसो-पांचसो रुपये तुझे मिलते हैं, उनसे अपना निर्वाह करता हुआ एवं साथमें ब्रह्मचिन्तन करता हुआ मस्तीके साथ निर्द्वन्द्व रहाकर। मंदिर-निर्माणकी लप्पन-छप्पनमें मत पड़।' इतनी डाट फटकार सुनकर वह महात्मा चुप होगया, और हम भी शान्तिसे सो गये।

रात्रिमें स्वप्नमें ऐसा स्पष्ट देख रहा हूँ कि-मैं नर्मदा-स्नानके लिए किनारे पर गया हूँ, प्रातःकालका समय है, प्राची-दिशामें बाल-भास्कर के पुनीत-दर्शन हो रहे हैं, सूर्य-देवकी सुनहरी-मनोहर-किरणें नर्मदाके उज्ज्वल-विमल-जलसे संपृक्त होकर उसकी शोभाको द्विगुणित कर रही हैं। और उस-पावन जलमें एक दिव्य-तेजस्विनी-मनोहारिणी-सुन्दरतम

रेशमीलाल-वस्त्र एवं सुवर्ण-हीरे आदिके दिव्य-अलंकारोंसे समलंकृत-लावण्य-सौन्दर्यमयी षे.डशवर्षकी देवी बैठी है, और वीणा बजा रही है। मैंने उसे आश्चर्यके साथ देखा, और मन विचार करने लगा कि-'यह सुन्दरी देवी जलके मध्यमें कैसे बैठी है? डूब क्यों नहीं जाती? जब मैं एकदम किनारे पर गया-तब वह कोकिला-विनिन्दित-मधुर-स्वर से बोल उठी कि-स्वामीजी 'ॐ नमो नारायणाय'। मैंने भी स्वाभाविक रूपसे-नारायण-नारायण देवी भगवती ऐसा कहा। परन्तु साथ ही आश्चर्य मुग्ध हुआ मन विचार कर रहा है कि-यह देवी कौन है? कहांसे आई है?, यहाँ जलमें क्यों बैठी है? जलमें निर्भय होकर ऐसी बैठी है, जैसे कोई स्थल पर-बिछे हुए-गलीचे पर बैठा हो'-इस जिज्ञासाकी निवृत्तिके लिए इसी ही देवीजीसे पूछा जाय! परन्तु जिह्वा कुछ बोल ही नहीं रही है, मन प्रेरणा दे रहा है, तो भी वह ऐसी निःस्तब्ध-चुप है, जैसे कि-आचार्य श्रीशंकरके कथनानुसार—

'स्मितज्योत्स्नाजालं तव वदनचन्द्रस्य पिबतां,
चकोराणामासीदतिरसतया चञ्चुजडिमा।

(सौन्दर्य-लहरी)

अर्थात् हे भगवति! देवि! तेरे मुख-चन्द्रकी स्मित-(ईषत्-हास) मयी चांदनीके समूहका पान करनेवाले-चकोरोंकी चञ्चु (चोंच) अति रसका लाभ होनेके कारण-जड़ताको प्राप्त होगई थी, यानी स्मित-रस का पान करते हैं-नेत्र, एवं जड़ताकी प्राप्ति होती है-चोंचमें, तद्वत्-नेत्र सौन्दर्यका पान कर रहे हैं, और जडता आई है-जिह्वामें।

केवल दोनों चक्षु ही स्थिर एवं मुग्ध-भावसे इसके दिव्यतम सुन्दरतम-मनोहर-गौर-विग्रहको ही देख रहे हैं, इसकी सौन्दर्य-लावण्य एवं सौष्ठव मण्डित-मुखाकृतिको ही देखकर आनन्द-विभोर हो रहे हैं। इसका कितना सुन्दर-दिव्य-मुखारविन्द है, कितने बढिया आकर्षक एवं लुभावने इसके समुज्ज्वल-नेत्र हैं, सामुद्रिक-शास्त्रके

लक्षणवाले-उन्नत-नासिका, अरुण-आभायुक्त-ओष्ठ-अधर एवं चिबुक-ललाट आदि-अंग-उपांग कितने सरस हैं। इसके दृष्ट-सौन्दर्यके विशेष वर्णन करनेमें शब्दोंकी शक्ति सर्वथा कुण्ठित हो जाती है। अतएव आचार्य-भगवत्पाद-श्रीशंकर स्वामी कहते हैं कि—

'घृतक्षीर-द्राक्षामधुमधुरिमा कैरपि पदैः,
विशिष्यानाख्येयो भवति रसनामात्रविषयः।
तथा ते सौन्दर्यं परमशिवदृङ्मात्रविषयः,
कथङ्कारं ब्रूमः सकलनिगमागोचरगुणे!॥ (आनन्द-लहरी)

अर्थात् घी, दूध, दाख, और मधुकी मधुरताको किसी भी शब्द द्वारा विशेषरूपसे नहीं बताया जा सकता, उसे तो केवल रसना (जिह्वा) ही जानती है। इसी प्रकार तुम्हारा सौन्दर्य केवल महादेवजी और उनके भक्तोंके नेत्रोंका ही विषय है, उसे हम शब्दोंके द्वारा क्यों कर बतावें? हे देवि! तुम्हारे अनुपमेय-अनन्त-गुणोंका वर्णन तो सारे वेद भी नहीं कर सकते।

इत्यादि—सौन्दर्यके भाव एवं विचार विस्मय-चकित-हृदयमें प्रादुर्भूत हो रहे हैं, उस समय वही दिव्य-देवी मन्दहास्य करती हुई-बद्रिकाश्रमकी तरफ रत्नजडितकंकणयुक्त-हाथका इशारा करके मधुर-स्वरसे बोल उठी कि-'स्वामीजी! बद्रिनारायण भगवान्का मन्दिर बनवा दीजिये, और उस महात्माका संकल्प पूरा कर दीजिये, एवं उसका विश्वास सफल बना दीजिये। आपके लिए यह बड़ी कठिन बात नहीं है, आप बडे महात्मा महामण्डलेश्वर-महाराज हैं। आपके दृढ़-संकल्पमात्रसे ही वह कार्य सफल-सिद्ध होजायगा।'

इतना कहकर मेरे देखते देखते ही वह देवी सहसा अदृश्य होगई। मैं हक्का-बक्कासा रह गया। वह कहां चली गई? वह कौन थी? यह समस्या वैसीकी वैसी ही रह गई। क्या वह तीर्थाधिष्ठात्री-नर्मदामैया थी? वैसा विचार उससमय प्रादुर्भूत हुआ ही नहीं।

तुरन्त ही मेरे नेत्र खुल गये, देखता हूँ कि-मैं शय्यापर आराम कर रहा हूँ, करीब ३॥-४ बजेका समय होगा। मैंने एक मधुर-दिव्य स्वप्न देखा। और स्वप्नमें इस पवित्र-नदीकी अधिष्ठात्री भगवती महाशक्ति-नर्मदामैयाने ही मुझे स्तुत्य-दर्शन एवं पावन-आदेश दिया, ऐसा निश्चय हुआ। मन श्रीनर्मदादेवीके शुभ-दर्शनसे एवं संभाषणसे खूब ही आह्लादित होगया था। परन्तु साथमें कुछ खेद भी था कि-मैं उस भगवतीसे कुछ पूछ ही नहीं सका, खुल कर संभाषण नहीं कर सका। आध्यात्मिक—तत्त्वविषयक—संवादलाभ भी प्राप्त नहीं कर सका। केवल उसके दिव्यतम—सुन्दरतम-मधुरतम-दर्शनसे ही अभिभूत—सा बना रहा।

प्रातः मैंने स्वामी पुरुषोत्तमानन्दको बुलाया और कहा—बिथली ग्रामके अमुक—अमुक भक्तोंको बुलालाओ, और मन्दिरका काम प्रारम्भ करदो। मेरे पास पेटीमें करीब ६५०) रु० थे। मैंने अपने सेक्रेटरी—स्वामी पूर्णानन्दजीसे कहा—कि इनमेंसे ५००) रु० दे दो, और मन्दिर—निर्माणके लिए ईंटें खरीद लो। जब भगवती—नर्मदा-मैयाका दिव्य—आदेश है तो इसमें किसी भी प्रकारका विलम्ब करना ठीक नहीं।

सायंकाल—जब मैं नर्मदा किनारे घूमने गया—तब नर्मदाके पावन-जलको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता हुआ—नर्मदा मैयासे मूक-भाषामें कहने लगा कि—हे देवी! भगवती! तू मन्दिर-निर्माण के लिए कह रही है न? अच्छी बात है। उत्तर-गुजरात के अनेक-ग्रामोंके भ्रमण का प्रोग्राम बनाकर, मेरे नाम-राशि-वृद्ध स्वामी महेश्वरानन्द जी मेरे समीप आये हैं। और उन्होंने कहा है कि—ग्रामोंमें दूध, दही; घी, आदिका बढिया भोजन तो मिलेगा, परन्तु भेट-पूजा आदि कुछ भी नहीं होगी। मैंने भी कहा है कि-मैं कुछ भी भेट-पूजा नहीं चाहता केवल ग्रामोंका भ्रमण एवं सद्धर्म-प्रचार करना चाहता हूँ। कोई कुछ देना चाहेगा तो भी हम भेट स्वीकार नहीं करेंगे। ऐसे नियमके साथ

मैं उत्तर-गुजरातके खेरवा, चाणस्मा, आदरज, आदि ग्रामोंकी तरफ जा रहा हूँ। नर्मदा मैया! उत्तर-गुजरातके भ्रमणमें-जो कुछ-नहीं चाहने पर भी जबरदस्तीसे मिलेगा-वह सब तेरा रहेगा; मैं उसकी एक लाल पाई से भी हाथ नहीं लगाऊँगा। परन्तु वहाँ मिलना-झुलना कुछ भी नहीं है। वे वृद्ध-महात्माजी भी कह रहे हैं कि-ग्रामके लोग गरीब हैं, उनसे कुछ भी नहीं मिलेगा। हमने भी कहा कि-हमें कुछ भी नहीं चाहिये। अब हम देखते हैं कि-मन्दिर निर्माणके लिए ठनाठन कैसे एवं कहांसे आती हैं। हे भगवति! तेरे दिव्य-आदेशकी-परीक्षा करनी पड़ रही है?। एक तरफ विश्वास तो अवश्य है कि-तेरा श्रद्धेय-आदेश, तेरे ही प्रबल-प्रतापसे सफल होगा ही। तू सर्वसमर्था-महाशक्ति-भगवती है। तेरी महनीय-शक्तिमें अविश्वास रखना नास्तिकता है।

एक ही महाशक्ति-भगवती-विविध-पावन-नाम एवं दिव्य रूपोंको धारणकर—'अम्बितमे! नदीतमे! देवीतमे! सरस्वति!' (ऋ० २।४१।१६) इस ऋग्वेदके मन्त्रानुसार-श्रेष्ठमातारूपा, श्रेष्ठ नदियों की अधिष्ठात्रीरूपा-श्रेष्ठ देवीरूपा एवं सरस्वतीरूपा होकर दर्शन देती है। अतएव भगवत्पाद आचार्य श्रीशंकर-स्वामी सौन्दर्य-लहरीमें कहते हैं कि—

'गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमागमविदो,
हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयाम्।
तुरीया कापि त्वं दुरधिगमनिःसीममहिमा,
महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषि!॥'

अर्थात् चतुर्मुख-ब्रह्माजीकी घरवाली-जो सकल-वाणियोंकी अधिष्ठात्री-देवी शारदा-भगवती है, वह भी तू ही है। श्रीहरिकी पत्नी-पद्मा भगवती इन्दिरा भी तू ही है, और श्री शंकरकी सहचारिणी-गिरि-राज-कुमारी दुर्गा भवानी भी तू ही है, ऐसा शास्त्रवेत्ता-महानुभाव कहते हैं। और इन सोपाधिक-शक्तियोंसे परे तुरीया-विशुद्ध-निरुपाधिक-

कोई अवर्णनीया--आह्लादिनीसंविच्छक्तिरूपा भी तू ही है । तेरी निरवधि-महिमा संपूर्णरूपसे जाननेके लिए अशक्य है। हे परब्रह्मकी महिषी अर्थात् पट्टरानी ! तू ही महामाया बनकर सकल-विश्वको भ्रमित या संचालित कर रही है ।

## आदेशकी अनायास-सफलता !

नर्मदातटसे हम सेठ श्रीबहेचरदासजीके प्रेम भरे-आग्रहका सन्मान कर दोरोजके लिए अमदावाद उतर गये । ४-५ महात्माओंके साथ हम उनके घरमें ही ठहर गये । दोरोजमें ही सेठ ने ५००) रु० की भेट-पूजा कर दी। हमने सेठजीसे कहा-ये रुपये नर्मदातट पहुँचाओ । वहां श्री नर्मदामैयाके आदेशसे भगवान्-बद्रिनारायणका मन्दिर बन रहा है, उसमें इसका विनियोग होगा ।

अमदावादसे हम खेरवा ग्राममें गये । वहां रामजी मन्दिरमें एवं पटेलोंकी वाडीमें निवास किया । मन्दिरमें ही कच्ची-भिक्षा अपने रसोइया द्वारा बनने लगी। बाहरका निमन्त्रण बिल्कुल स्वीकृत नहीं होगा, जिसे कुछ सीधा सामान देना हो-वह मन्दिरमें ही पहुंचावे, एवं न किसीके घरमें पधरामणिके लिए भी श्रीमण्डलेश्वर-महाराज जायेंगे, ऐसी वृद्ध स्वामीजीने घोषणा कर दी। प्रातः विवेक-चूड़ामणिका स्वाध्याय एवं सायं गीताके द्वादशाध्याय-भक्तियोगका प्रवचन शुरु कर दिया। ग्रामके भावुक-लोग सत्संगका लाभ लेने लगे। बम्बईमें होटल वाले श्रीमान्-अम्बालाल भाई पटेलको मालूम हुआ कि-मण्डलेश्वर महाराज, मेरे ग्राममें पधारे हैं, तुरन्त ही वह अपनी पत्नी एवं पुत्रको साथ लेकर बम्बईका अपना काम-धंधा छोड़कर-खेरवा पहुँचा। और स्थानीय-भक्तोंसे पूछने लगा कि-यहाँ श्रीमण्डलेश्वर-महाराजकी पधरामणि आदि होती है-कि-नही ? । भक्तोंने तथा साथके वृद्ध-स्वामीजीने कहा-उसके लिए निषेध किया है। श्रीअम्बालाल भाईने कहा-ऐसा नहीं हो सकता । हमारे ग्रामकी इज्जतका यह प्रश्न है। हमारे ग्राममें अभीतक-कोई मण्डलेश्वर महाराज आये ही नहीं हैं। सद्भाग्यवशात् आये हुए-

उन महानुभाव की भेट-पूजा पधरामणि-आदिके द्वारा हम स्वागत न करें तो हमारे यशस्वी-ग्रामकी प्रशस्त-नाक ही कट जाय। इसलिए आपका यह निषेध-जैसे बम्बई-आदि स्थलोंमें नहीं चलता, वैसे यहां क्यों चलेगा ? नहीं चल सकता। मैं श्रीमण्डलेश्वर-महाराजसे भी प्रार्थना करुँगा, और सन्मुख-स्थित श्रीवृद्ध-स्वामीजी से भी हाथ जोड़कर विनय करुँगा।

श्रीअम्बालालजीके तथा स्थानीय-भक्तोंके आग्रहसे अब वृद्ध स्वामीजी छटपटाने लगे, डरते डरते मेरे समीप आकर कहने लगे कि- इन भक्तोंकी ऐसी प्रबल-इच्छा है, इसलिए आप पधरामणि स्वीकर करें तो अच्छा। मैंने कहा-बम्बईमें ही आपके आदेशके अनुसार उसका निषेध मान लिया है, अब उसकी वात मत करो, शान्ति से रहो, भक्तों को प्रेमसे समझा दो, पधरामणिमें हम बिल्कुल नहीं जायेंगे।

दूसरे रोज फिर उसके लिए तूफान खड़ा हुआ। अम्बालाल-भाईकी प्रबल-प्रेरणासे सभी भक्तलोग वृद्धस्वामीजीके पीछे पड गये। आखिर—'भक्तके वशमें हैं, भगवान्' वाली बात सिद्ध होगई। भक्त-भीष्मपितामहके लिए जैसे भगवान् श्रीकृष्णने अपनी शस्त्र नहीं ग्रहण करनेकी प्रतिज्ञा तोड़ दी-थी-वैसे ही यहाँ भी भक्तोंके लिए प्रतिज्ञा तोड देनी पडी। प्रथम बम्बईवाले-श्रीअम्बालालभाईके घरमें पधरामणि मानी गई। फल-फूल-माला एवं 'प्रसादके साथ ५००) रु०की नोटें भेटरूपसे सन्मुख उपस्थित होगईं। मैंने समझा कि—यह सब नर्मदा-मैयाका ही पुनीत-प्रताप है, जिस प्रतापने मरु-भूमिके रेतिले-रणमें भी मधुर-स्वच्छ-जलके कल-कल निनादवाले झरने प्रवाहित कर दिये। अबतो खेरवाग्राममें पधरामणियोंका उफान आगया। ६-१० रोज वहां रहे, इतनेमें नर्मदामैयाके लिए १३००) रु० मिल गये। मैंने उसीसमय एक हजार रुपया श्रीअम्बालालभाईको दे दिया, और कहा कि-इसे नर्मदातट-बद्रिकाश्रममें पहुंचाओ।

सायंकाल नियमतः हम जंगलमें घूमने जाते थे। उससमय

हंसते हुए मैंने वृद्धस्वामीजीसे कहा कि—आप तो मना कर रहे थे कि—ग्रामोंसे कुछ भी भेट-पूजा नहीं मिलेगी। परन्तु ग्रामवाले तो शहरवालोंसे भी धर्म—सेवामें बडे उत्साही एवं उदार निकले। कितना मना करने पर भी उन लोगोंने बड़ी श्रद्धाके साथ ठनाठनकी ढेर लगा दी। हँसकर वृद्धस्वामीने कहा—आपका प्रारब्धही ऐसा विलक्षण है कि—आपको श्मशान की जली-भुनी-निर्जन-भूमिमें भी बैठा दिया जाय तो वहाँ श्मशानके भूत-प्रेत भी ठनाठन की वर्षा करने लग जांय। मैंने कहा—यह सब प्रारब्धका नहीं, किन्तु नर्मदा-मैयाका ही पुनीत-प्रताप है!

'यत्कृपालवकटाक्षक्षेपणं, सेवकस्य सकलार्थसंपदः।
संतनोति वचनाङ्गमानसैः, तां विश्वशर्मदां नर्मदां भजे॥

अर्थात् जिसका यत्किञ्चित् कृपाकटाक्षका प्रक्षेप, सेवक-जनके लिए सकल-अर्थोंकी संपत्तिका विस्तार कर देता है, ऐसी विश्वके निखिल-सुखोंकी दात्री-भगवती—नर्मदामैयाका मैं मन वाणी एवं शरीर द्वारा भजन-सेवन करता हूँ।

और यह भी नियम है कि—'त्यागे सो आगे, और मांगे सो भागे।' 'माया-छाया एक-सी, तुलसी लखी न जाय। बिन मांगे पीछे पडे, और मांगे भागी जाय।' 'भागती फिरती थी दुनियाँ, जब तलब (इच्छा) करते थे हम। अब जो हमने की नी नफरत (उपेक्षा) बेकरार (प्रबल-इच्छासे) आने को है।'

इस प्रकार खेरवासे हम आदरज ग्राममें गये। वहां भी भक्तोंने अच्छा सेवा—सत्कार किया। पश्चात् चाणस्मा, जितोड़ा, बालिसणा, गोराद, उंभा आदि अनेक ग्रामोंमें गये। दो—अढाई मासके भ्रमणमें भगवती-नर्मदाने अनायासतः करीब दशहजार रुपये दिला दिये, जिनके लिये भक्तोंको कुछ भी विशेष-प्रेरणा नहीं करनी पड़ी थी। केवल-भेट-पूजा-पधारमणिका ही यह उपहार था। साथ ही साथ नर्मदातट पर

भगवान्-बद्रिनारायणका मन्दिर भी बड़े जोरोंसे बनने लगा।

उत्तर-गुजरातका भ्रमण कर, पश्चात् कुछ रोज हरिद्वारमें निवास कर हम बम्बई-पारला संन्यासाश्रममें आये। बम्बईके धर्मनिष्ठ-भक्तोंको भी कर्णाकर्णी मालूम हुआ कि-श्रीमण्डलेश्वर महाराज, नर्मदातटपर श्रीनारायणका भव्य-मन्दिर बनवा रहे हैं, और पुराण प्रसिद्ध-प्राचीन तीर्थरूप-बद्रिकाश्रमका पुनरुद्धार कर रहे हैं। सभी अपनी शक्तिके अनुसार उसके लिए ठनाठन देने लगे। पारलाके ॐ सोहं प्रेमी उदारहृदय-सेठ ठाकुरदास गांधीजी आये। और कहने लगे कि—स्वामीजी महाराज! आप वहाँ बद्रिकाश्रममें 'ॐसोहं' का मन्दिर बनायें, हमने कहा—बहुत अच्छा। बद्रिनारायण-भगवान्के मन्दिरके ऊपरकी मंजिलमें 'ॐसोहं' का बढ़िया-ध्यानमंदिर बना दिया जायगा। नीचे साकार-भगवान्की आराधना होगी तो ऊपर निराकार-ब्रह्मकी प्रतीक 'ॐसोहं' का ध्यान होगा। सेठ ठाकुरदास गांधी बड़े प्रसन्न होगये, और वे भी ढेरके ढेर ठनाठन देने लगे एवं दिलाने लगे, इसप्रकार देखते देखते ही-अल्पसमयमें श्रीनर्मदामैयाने बढिया-भव्य-उन्नतम शिखर वाला-तीन मंजिलोंवाला मन्दिर बनवा डाला। जिस-का शिखर चांदोदके घाट परसे भी-जो वहांसे दो माईल दूर पर है-दीख पड़ता है। सबके नीचे विशाल-महा लक्ष्मीगुफा भी तैयार होगई—जो शीतकालमें गरम रहती है और गरमीमें शीतल रहती है। मंदिरके पीछे एवं अगल-बगल महात्माओंके निवासके लिए कमरे भी बना दिये। सामने जगमोहन का दालान एवं ओटला भी बन गया।

## प्रतिष्ठा-महोत्सव ।

मन्दिर तैयार होनेपर कनखल-सुरतगिरि-बंगलाके आदरणीय-कोठारीजी स्वामी कैवल्यानन्दजीमहाराज जयपुरसे बढ़िया-बढ़िया मूर्तियाँ ले आये। विक्रम संवत् २०१२) के फाल्गुन सुदी ६ सोमवारको भगवान् बद्रिनारायणकी तथा नारायणेश्वर-केदारनाथ-महादेवकी तथा गुफामें श्रीमहालक्ष्मीकी तथा ऊपरके खण्डमें 'ॐसोऽहं' की अपूर्व-भव्य

मन्त्रप्रतीककी बडी धूमधामसे विधिपूर्वक प्रतिष्ठा की गई। महामण्डलेश्वर स्वामी प्रेमपुरीजीमहाराजके शुभ-करकमलोंद्वारा बद्रिनारायणके मंदिर-का उद्घाटन हुआ। श्रीशकरीबहिन-सकरचन्दसेठकी तरफसे भगवान्-बद्रिनारायणको गंगा-जमनी सोनाचांदीका बढिया मुकुट पहिनाया गया। और संन्यासी-समाजके भीष्मपितामह-वयोवृद्ध स्वामी जगदी-श्वरानन्दभारतीजी महाराज द्वारा 'ॐसोहं' के मंदिरका उद्घाटन हुआ। श्रीमानसेठ ठाकुरदास गांधी और उनके अनुयायी श्रीरामचन्द्र आदिके द्वारा 'ॐसोहं' के मंगल-गीत गाये गये। और प्रतिष्ठाके उपलक्ष्यमें नव रोजतक भव्य-उत्सव मनाया गया

श्रद्धेय कोठारी स्वामी कैवल्यानन्दसरस्वतीजीमहाराज, उत्सवसे १५ रोज आगे हरिद्वारसे बद्रिकाश्रममें प्रबन्धके लिए पधार गये थे। और उन्होंने अपनी व्यावहारिकी-दक्षता मधुरवाणी एवं पुरुषार्थद्वारा बद्रिकाश्रममें विशाल-रेवानगरका निर्माण किया। उसमें आनन्दचट्टी, नारायणचट्टी, रुद्रचट्टी, गणेशचट्टी, महामण्डलेश्वरनिवास, सन्त-महा-त्माओंका निवास, व्याख्यान-भवन, भोजनालय, पाकालय, आदि अनेक विस्तृत-अनुकूल स्थानोंका आयोजन किया। बिथली कारवण आदि ग्रामोंके भक्तोंने विविध-मण्डपोंके निर्माणके लिए वस्त्रोंकी ढेर लगा दी। चांदोदके एक उदार-व्यापारीने बांस एवं बल्लियांकी ढेर लगा दी। सोखडाग्रामके भक्तोंने ऐंजिन लगा कर जलकी व्यवस्था कर दी। बडौदाकी महाराणीने बडे-बडे तम्बू एवं विशाल शामियाने दिये। विद्युत-उत्पादनके लिए दो-तीन जनरेटर-यन्त्र लगा दिये। नगरमें जैसी पानी, प्रकाश, शौचालय, एवं बाथरुम आदिकी व्यवस्था होती है, वैसी ही व्यवस्था इस रेवानगरमें करके श्रीकोठारीजी-महाराजने इसके नगर-नामको सार्थक बना दिया। रात्रिमें विद्युतके अनेकरंगोंके ट्यूब लम्बी-लम्बी नलियाँ-जैसे-जगमगाने लगे। जिस जंगलमें रात्रिमें भयंकर-निबिड-अंधकार छाया रहता था, और जो वन्यप्राणी-गीदड़ोंकी ध्वनिसे भीषणसा बना रहता था, वही जंगल प्रकाशसे

एवं भगवन्नामसंकीर्तनकी मधुर-ध्वनिसे मंगलमय-रमणीय बन गया। ध्वनिवर्धक-लोर्डस्पीकर कीर्तन-व्याख्यानादिकी ध्वनिको पांच-पांच मीलके विस्तारतक फैलाने लगे। बम्बईसे करीब ६००-७०० भक्त-नरनारियोंका संघ महात्माओंके साथ वहाँ पहुंच गया। स्वामी-शंकरानन्दजी वेदान्ताचार्य, स्वामी-सुरेश्वरानन्दजी वेदान्ताचार्य, स्वामी-स्वतन्त्रानन्दजी, स्वामी-गणेशानन्दजी, स्वामी-ब्रह्मानन्दजी आर्यमुनि, स्वामी-दयानन्दजी वेदपाठी, आदि अनेक—विद्वान् परिव्राजक वहां पधार गये। डाकोरके आचारी वैष्णव-महन्त स्वामी-मोहनदासजी आगये। दो-सो ढाइसो तक सन्त-महात्माओंका वहां जमघट होगया। प्रयागके कुंभके समान यहां नर्मदाकुंभका दर्शन होने लगा। हजारोंकी तादादमें आसपासके ग्रामोंके नरनारी भी दर्शनके लिए आने लगे। चाय, मिठाई आदिकी दश-बीस दुकानेंभी लग गईं।

प्रतिष्ठाके उपलक्ष्यमें बम्बईके सेठ केसुरदास करसनदास महेता तथा सेठ तापीदास भाईकी तरफसे महाविष्णु-यज्ञका तथा नडीयाद-निवासी सेठ महेन्द्र-अम्बालाल भाई ठाकरकी तरफसे महारुद्र-यज्ञका तथा सेठ ठाकुरदास गांधीकी तरफसे 'ॐसोहं' यज्ञका पांच-रोजके लिए आयोजन किया गया। चांदोद-करनाली आदिके विद्वान्-वेदपाठी-कर्मकाण्डी ब्राह्मण इन यज्ञोंके ऋत्विक् हुए। अरणिमन्थनसे यज्ञकी अग्नि प्रज्वलित की। गीतापारायण, विष्णुसहस्रनामपारायण, महात्मागण एवं भक्तगणोंके द्वारा संमिलितरूपसे होने लगे। मण्डलेश्वर-महाराजोंके एवं विद्वान्-महात्माओंके एवं पण्डितोंके व्याख्यान होते रहे। व्याख्यानोंके प्रारम्भमें एवं अन्तमें ब्रह्मचारी अखिलानन्दजीके भजनोंकी एवं कीर्तनोंकी-नर्मदातटके एकान्त-शान्त-पवित्र वातावरणमें मधुर एवं सुरिली ध्वनि गुंजायमान होती रही।

वड़े-बड़े भण्डारे होने लगे, दो-दो-तीन-तीन हजारकी लम्बी-लम्बी भोजनकी पंक्तियाँ प्रातः एवं सायं बैठने लगीं। भोजनके प्रारम्भमें हाथमें तम्बुरा एवं किरताल लेकर कीर्तनप्रेमी स्वामी आत्मानन्दजी

सन्तोंसे एवं भक्तोंसे 'श्रीकृष्ण! गोविन्द! हरे! मुरारे! हे नाथ! नारायण! वासुदेव! राधे! गोविन्द! भजो, शिवाय नमः, नमः शिवाय आदिका कीर्तन कराता रहा। भोजनके अन्तमें विविध-श्लोकोंके उच्चारण होते रहें। ग्रामोंसे जो जो भी दर्शनके लिए एवं सत्संगके लिए आते थे- उन सबको नर्मदामैया-भगवती बढ़िया-मिष्टान्न-भोजन देती थी। वहांसे कोई भी भूखा नहीं जाने पाता था, चाहे वह ब्राह्मण हो, या चाण्डाल हो, सबको समानरूपसे भगवान्का प्रसाद मिल जाता था। पंक्तिमें कोई भी बैठ जाय, विना भेदभावके सबको भोजनकी पत्तलें मिल जातीं थीं। दम्बईका सेठ मगनभाई कापडिया प्रतिदिन भोजनकी हरिहर पुकारता था, मुक्तकण्ठसे वह चिल्लाता था कि—ग्रामोंसे आये हुए-सभी नर-नारी, बालक-बालिकाएँ यहाँसे प्रसाद पाकर ही जायें। इसप्रकार प्रतिष्ठा-महोत्सवकी चहल-पहल, भीड-भाड एवं धूमधाम नव रोज तक बनी रही। फाल्गुनमासमें होने वाले नर्मदातटके मतिरोंकी भक्तोंके द्वारा भेटरूपसे ढेर होने लगी। और उनका भी प्रसाद बटने लगा।

सेठ ठाकुरदासगां धीजीकी तरफसे दो-तीन बडे-बडे भण्डारे हुए। तथा यज्ञकी पूर्णाहूति पर सेठ तापीदास करसनदास मेहताकी तरफसे बडा भारी लड्डु-पुरी आदिका भण्डारा हुआ। विदाईके अन्तिम दिन पेटलादवाले दातार सेठ रमणलालजीकी तरफसे भण्डारा हुआ। इसप्रकार 'अन्नमयो यज्ञः' इस शास्त्रीय यज्ञका विशेपण, यहां चरितार्थ हुआ प्रतीत होने लगा। इसप्रकार बडी धूमधामके साथ निर्विघ्न-सानन्द बद्रिनारायण—भगवान्की प्रतिष्ठाका महोत्सव, संपूर्णरूपसे भगवती नर्मदामैयाकी अपार-कृपासे संपन्न हुआ। इसलिये यहांके बड़े बूढे लोग भी कहने लगे थे कि—ऐसा विशाल-महोत्सव नर्मदातट पर हमारे ख्यालमें सैकड़ों वर्प हुए—नहीं हुआ। इस महोत्सवमें स्वामी गणेशा-नन्दभारती, पारला-संन्यासाश्रमके कोठारी स्वामी नारायणगिरिजी, स्वामी पुरुपोत्तमानन्दजी, स्वामी पूर्णानन्दजी, स्वामी अमृतानन्दजी,

स्वामी हरिशंकरभारती, पूजारी जयनारायणगिरि-नागाजी, स्वामी रामानन्दजी, स्वामी अभेदानन्दजी, आदि अनेक महात्माओंने तथा दरियापुर एवं बिथली ग्रामके भक्त-जनोंने भी बड़ा सहयोग दिया ।

## स्तुति-प्रार्थना-आशीर्वाद एवं समाप्ति ।

प्रतिष्ठित-बद्रिनारायणका श्रीविग्रह, अतीवसुन्दर-मनोरम होनेके कारण वह श्रद्धाभक्ति—वर्धक हुआ दर्शनमात्रसे दर्शक-भावुकभक्तोंके चित्तको आकर्षित कर प्रभावित करता रहा । बीचमें प्रतिष्ठित—भगवान् शंकरका भव्य—दर्शनीय बाणलिंग भी इस प्रभावको द्विगुणित कर हरिहरकी एकताको प्रद्योतित करता रहा। प्रथम प्रतिष्ठित—भगवान्-बद्रिनारायणकी पुरुष—सूक्तके द्वारा तथा भगवान्—नारायणेश्वर-महादेवकी 'नमस्ते रुद्र मन्यवे' इत्यादि मन्त्रोंके द्वारा स्तुति की गई। पश्चात् इसप्रकारके विविध-प्रशस्त-श्लोकोंके द्वारा भी स्तुति—प्रार्थना की गई ।

इनमें श्रीनारायणकी स्तुति-प्रार्थनाके ये श्लोक थे—

मायाकल्पित—मातृतामुखमृषाद्वैतप्रपञ्चाश्रयः,<br>
सत्यज्ञानसुखात्मकः श्रुतिशिखोत्थाखण्डधीगोचरः ।<br>
मिथ्याबन्धविधूननेन परमानन्दैकतानात्मकं,<br>
मोक्षं प्राप्त इव स्वयं विजयते विष्णुर्विकल्पोज्भितः ।।

या लक्ष्म्या निखिलानुपेक्ष्य विबुधानेको वृतः स्वेच्छया,<br>
यः सर्वान्स्मृतमात्र एव सततं सर्वात्मना रक्षति ।<br>
यश्चक्रेण निकृत्य नक्रमकरोन्मुक्तं महाकुञ्जरम्,<br>
द्वेषेणापि ददाति यो निजपदं तस्मै नमो विष्णवे ।।

नमः सर्वेष्टाय श्रुतिशिखरदृष्टाय च नमो,<br>
नमोऽसंश्लिष्टाय त्रिभुवननिविष्टाय च नमः ।<br>
नमो विस्पष्टाय प्रणवपरिमृष्टाय च नमो,

नमस्ते सर्वात्मन् ! पुनरपि पुनस्ते मम नमः ॥
लक्ष्मीपते ! कमलनाभ ! सुरेश ! विष्णो !,
यज्ञेश ! यज्ञ ! मधुसूदन ! विश्वरूप ! ।
ब्रह्मण्य ! केशव ! जनार्दन ! वासुदेव !
लक्ष्मीनृसिंह ! मम देहि करावलम्बम् ॥
नारायणाय रमणाय रमावराय, नारायणाय रसिकाय रसाद्वयाय ।
नारायणाय निजभक्तप्रपोषकाय, नारायणाय वरदाय नमो नमस्ते ॥

जो विष्णु-परमात्मा वस्तुतः द्वैत-विकल्पसे रहित है, तथापि जो मायासे कल्पित-प्रमाता, प्रमाण, प्रमेयादि मिथ्या-द्वैतप्रपञ्चका अधिष्ठान बना हुआ है, सत्य ज्ञान एवं आनन्द रूप है, श्रुतिशिखारूप उपनिषद्विचारसे समुत्पन्न-अखण्ड-ब्रह्माकारा-बुद्धिवृत्तिका विषय है, मिथ्याबन्धके विधूनन द्वारा परमानन्दका एकतान-स्वरूप मोक्ष प्राप्त करता हुआ के समान स्वयं जो विजयी हो रहा है। जो भगवान महा-लक्ष्मी द्वारा समस्त देवोंकी उपेक्षा करके स्वेच्छासे पतिरूपसे स्वीकृत हुआ। जो प्रभु स्मरणमात्रसे सभीप्रकारसे सभी की निरन्तर रक्षा करता रहता है। जिसने सुदर्शन-चक्र द्वारा ग्राहके शिरका छेदन करके महान्-गजको नक्रके वक्त्रसे मुक्त किया। जो द्वेषसे भी अपने मोक्षपदका दान करता है, उस विष्णु नारायणको नमस्कार है। जो परमात्मा आनन्द स्वरूप होनेके कारण सबका इष्टदेव है, उसे नमस्कार हो। जो उपनिषद्विचार द्वारा दृष्ट (अनुभूत) होता है, उसे नमस्कार। जो संश्लेष-रहित-असंग-निर्लेप है, उसे नमस्कार। जो त्रिभुवनमें निविष्ट है-ओत प्रोत है-उसे नमस्कार। जो सर्वात्मा होनेके कारण विस्पष्ट है, अर्थात् साक्षात्-अपरोक्ष है, अथवा जो योगमाया द्वारा समावृत्त होनेसे अविस्पष्ट है, उसे नमस्कार। एवं जो प्रणव-उपासना द्वारा मुमुक्षुओंसे परिमृष्ट-होता है, यानी खोजा जाता है, उसे नमस्कार हो। हे सर्वात्मन् ! बार बार तुझे मेरा नमस्कार हो। हे लक्ष्मीनाथ ! जिसकी नाभिमें

कमल है ऐसा हे पद्मनाभ ! देवोंके ईश्वर ! हे विष्णो ! यज्ञोंके अधिपति तथा स्वयं यज्ञ स्वरूप, हे मधुसूदन ! हे विश्वरूप ! हे ब्रह्मण्य ! यानी वेद एवं ब्राह्मणोंके रक्षक ! हे केशव ! हे जनार्दन-वासुदेव ! हे लक्ष्मी-संयुक्त नृसिंह ! मुझे अपने हस्तका अवलम्बन दे। सकल विश्वमें रमणकरने वाला, रमा-लक्ष्मीका वररूप नारायणको नमस्कार। रसिक, अद्वयसुखरूप--नारायणको नमस्कार, अपने भक्तोंका शीघ्र पोषणकरनेवाले--नारायणको नमस्कार, वरदाता तुझ नारायणको नमस्कार हो।

श्रीशंकर-महादेवकी स्तुति-प्रार्थना—

नमो गौरीशाय स्फटिकधवलाङ्गाय च नमो,
नमो लोकेशाय स्तुतविबुधलोकाय च नमः।
नमः श्रीकण्ठाय क्षपितपुरदैत्याय च नमो,
नमः फालाक्षाय स्मरमदविनाशाय च नमः ॥

संसारे जनितापरोगसहिते तापत्रयाक्रन्दिते,
नित्यं पुत्रकलत्रवित्तविलसत्पाशैर्निबद्धं दृढम्।
गर्वान्धं बहुपापवर्गसहितं कारुण्यदृष्ट्या विभो !
श्रीमृत्युञ्जय ! पार्वतीप्रिय ! सदा मां पाहि सर्वेश्वर ! ॥

हे पार्वतीहृदयवल्लभ ! चन्द्रमौले !, मृत्युञ्जय ! त्रिनयन ! त्रिजगन्निवास !।
नारायणप्रिय ! मदापह ! शक्तिनाथ ! संसारदुःखगहनाज्जगदीश ! रक्ष ॥
जगन्नाथ ! मन्नाथ ! गौरीसनाथ !, प्रपन्नानुकम्पिन् विपन्नार्तिहारिन् !।
महःस्तोममूर्ते ! समस्तैकबन्धो !, नमस्ते नमस्ते पुनस्ते नमोऽस्तु ॥
महादेव ! देवेश ! देवाधिदेव ! स्मरारे ! पुरारे ! यमारे ! हरेति।
ब्रुवाणः स्मरिष्यामि भक्त्या भवन्तं, ततो मे दयाशील ! देव ! प्रसीद ॥

गौरीके ईश्वरको नमस्कार, स्फटिक-मणिके समान शुक्ल-अंगों वाले भगवान्‌को नमस्कार। समस्त-भूरादिलोकोंके ईश्वरको नमस्कार,

देव-लोगोंके द्वारा संस्तुत-प्रभुको नमस्कार। श्रीकण्ठको नमस्कार, त्रिपुर-दैत्यके नाशक-शिवको नमस्कार, जिसके भालमें तृतीय नेत्र है-उसे नमस्कार, जिसने कामके मदका विनाश किया है, उसे नमस्कार हो। जो संसार जन्म, संताप एवं रोग सहित है, एवं आध्यात्मिकादि तापत्रय से आक्रन्दित है, उसके पुत्र, कलत्र एवं वित्तसे समुत्थित विविध-पाशों से मैं सर्वदा दृढ़रूपसे बद्ध हुआ हूँ। जाति-कुलादिके गर्वोंसे अन्धा बना हूँ, बहु प्रकारके पापोंके समुदायसे संयुक्त हूँ, उस मुझ-अधमकी-हे विभो! श्रीमृत्युञ्जय! पार्वतीके प्रिय! सर्वेश्वर-प्रभो! सर्वदा करुणाकी दृष्टि द्वारा रक्षा कर। हे पार्वतीके हृदयवल्लभ! हे चन्द्रमौली! मृत्युके विजयी! तीन-नेत्र-वाले! त्रिजगत्में निवास करने वाले! हे नारायणके प्रिय! या जिसे नारायण प्रिय है ऐसे, मदके विनाशक, शक्तियोंके स्वामी, हे जगदीश! संसारके गहन दुःखोंसे तू मेरी रक्षा कर। हे जगत्के नाथ! हे मेरे नाथ! हे गौरी सहचर! हे शरणागतोंपर अनुकंपा करनेवाले! हे विपत्तिग्रस्त-जनोंके दुःखोंको हरने वाले! हे दिव्य-तेजः-पुञ्जकी मूर्तिरूप! हे समस्त विश्वके एकमात्र उपकारी बन्धुरूप! तुझे नमस्कार हो, नमस्कार हो, पुनः पुनः नमस्कार हो। हे महादेव! देवेश! देवाधि-देव! कामका त्रिपुरका एवं यमका विध्वंसक-शत्रुरूप हे हर! शंकर! ऐसा बोलता हुआ भक्तिपूर्वक मैं तेरा स्मरण करता हूँ, इसलिये हे दयाशील! देव! मुझपर तू प्रसन्न हो।

गुफामें प्रतिष्ठित-महालक्ष्मी-भगवतीकी स्तुति-प्रार्थना—

गीर्देवतेति गरुडध्वज-सुन्दरीति, शाकंभरीति, शशिशेखरवल्लभेति।
सृष्टिस्थितिप्रलयकेलिषु संस्थितायै, तस्यै नमस्त्रिभुवनैकगुरोस्तरुण्यै॥
श्रुत्यै नमोऽस्तु शुभकर्मफलप्रसूत्यै, रत्यै नमोऽस्तु रमणीयगुणार्णवायै।
शक्त्यै नमोऽस्तु शतपत्रनिकेतनायै, पुष्ट्यै नमोऽस्तु पुरुषोत्तमवल्लभायै॥
नमोऽस्तु नालीकनिभाननायै, नमोऽस्तु दुग्धोदधिजन्मभूम्यै।
नमोऽस्तु सोमामृतसोदरायै, नमोऽस्तु नारायणवल्लभायै॥

संपत्कराणि सकलेन्द्रियनन्दनानि,
साम्राज्यदानविभवानि सरोरुहाक्षि ! ।
त्वद्वन्दनानि दुरिताहरणोद्यतानि,
मामेव मातरनिशं कलयन्तु मान्ये ! ॥

दिग्घस्तिभिः कनककुंभमुखावसृष्ट-
स्वर्वाहिनीविमलचारुजलप्लुताङ्गीम् ।
प्रातर्नमामि जगतां जननीमशेष-
लोकाधिनाथगृहिणीममृताब्धिपुत्रीम् ॥

कमले ! कमलाक्षवल्लभे ! त्वं, करुणापूरतरङ्गितैरपाङ्गैः ।
अवलोकय मामकिञ्चनानां, प्रथमं पात्रमकृत्रिमं दयायाः ॥
सरसिजनिलये ! सरोजहस्ते ! धवलतमांशुकगन्धमाल्यशोभे ! ।
भगवति ! हरिवल्लभे ! मनोज्ञे !, त्रिभुवनभूतिकरि ! प्रसीद मह्यम् ॥

(भगवत्पादीयकनकधारास्तोत्र)

विश्वकी सृष्टि स्थिति एवं प्रलयरूप-क्रीडाओंमें एकमात्र तूही वाणीकी अधिष्ठात्री-देवता शारदारूपसे, गरुडध्वज-श्रीविष्णु भगवान्की सुन्दरीभार्या-श्रीपद्मारूपसे, एवं शशिशेखर-श्रीशंकर-भगवान्की प्रियाभार्या शाकंभरी-दुर्गारूपसे अवस्थित रहती है, उस त्रिभुवनका एकमात्र-गुरुरूप सर्वेश्वर-प्रभुकी तरुणी-पत्नीरूप तुझ-भगवतीको मेरा नमस्कार हो। शुभकर्मोंके फलोंकी प्रसूति करनेवाली-श्रुति-भगवतीरूप तुझे नमस्कार हो। रमणीय-गुणोंकी सागर-रति-भगवतीरूप तुझे नमस्कार हो। सैकड़ों-पखडियोंवाला-कमल जिसका निकेतन (सदन) है-ऐसी कमलालया-महालक्ष्मी भगवतीरूप तुझे नमस्कार हो, पुरुषोत्तम-नारायणकी वल्लभा-पुष्टि-भगवतीरूप तुझे नमस्कार हो । विकसित कमलके समान प्रसन्न-सुगन्धाढ्य-मुखवाली भगवतीको नमस्कार हो। क्षीर-सागर जिसकी जन्मभूमि है, ऐसी भगवतीको नमस्कार हो। चन्द्र

एवं अमृतकी सहोदरी (भगिनी) भगवतीको नमस्कार हो। नारायणकी प्रियतमा इन्दिरा भगवतीको नमस्कार हो। हे कमल-पत्रके समान प्रसन्न मनोहरनेत्रोंवाली-भगवती माता ! तेरे प्रति किये गये वन्दन, विविध-संपत्तियोंका दान करते है, समस्त चक्षु-श्रोत्रादि इन्द्रियोंमें विमल-आनन्दका समर्पण करते हैं, साम्राज्यका दान देकर अपना-अनुपम प्रभाव दीखाते हैं, एवं पापोंके हरण करनेमें सदा समुद्यत रहते हैं, अतः हे माननीया देवी ! मेरे भी वन्दन मुझे भी सदा ऐसा फल प्रदान करें, ऐसी कृपा करना। दिशाओंके अधिष्ठाता-हस्तियोंके द्वारा सुवर्णके कुंभोंमें भरे हुए-गंगाके विमल-सुन्दर-जलोंके प्रक्षेपद्वारा-जिसके शिरः आदि अंग, सदा अभिषिक्त होते रहते हैं, ऐसी समस्त-जगत्की जननी-अम्बा निखिललोकोंके अधीश्वर-परमेश्वरकी गृहिणी-अमृतोदधिकी पुत्री महालक्ष्मीको मैं प्रातः नमस्कार करता हूँ। हे कमले ! पुण्डरीकाक्ष-नारायणकी वल्लभे ! तू करुणाके प्रवाहसे तरंगित-कटाक्षोंके द्वारा अकिञ्चनोंका अग्रसर, दयाका वास्तविक-पात्ररूप-मुझे देख। अर्थात् तेरे--कृपाकटाक्षमय--अवलोकनमात्रसे ही मेरी सभी हीनताएं एवं दीनताएँ दूर भाग जायगीं। हे कमलमें निवास करने वाली ! कमलको हस्तमें धारण करने वाली ! हे अत्यन्त धवल (सफेद) रेशमी वस्त्रोंसे चन्दन एवं मालासे सुशोभित ! हे श्रीहरिकी प्रिया-सुन्दरी ! भगवती ! त्रिभुवनमें विभूतियोंका दान करनेवाली ! तू मुझपर प्रसन्न हो।

इसप्रकार मंदिरमें प्रतिष्ठित-गौरी, गायत्री, गणेश एवं हनुमान्की भी क्रमशः ऐसी स्तुति प्रार्थनाएँ की गईं—गौरीकी स्तुति—

विधात्री धर्माणां त्वमसि सकलाम्नायजननी,
त्वमर्थानां मूलं धनदनमनीयाङ्घ्रिकमले !।
त्वमादिः कामानां जननि ! कृतकन्दर्पविजये !,
सतां मुक्तेर्बीजं त्वमसि परब्रह्ममहिषी ॥

हे गौरी-देवी ! सम्पूर्णधर्मोंकी सृष्टि करनेवाली और समस्त-

आगम-शास्त्रोंको जन्म देनेवाली तुम्हीं हो। यक्षाधिराज-कुबेर भी तुम्हारे चरणोंकी वन्दना करते हैं, तुम्हीं समस्त-वैभवोंका मूल हो। हे कामदेवपर विजय पानेवाली मा! कामनाओंकी आदि-कारण भी तुम्हीं हो। तुम परब्रह्मस्वरूप-महेश्वर-शंकरकी पटरानी हो, अतः तुम्हीं सन्तोंके मोक्षका बीज-ब्रह्मविद्यारूपा हो।

गायत्रीकी स्तुति—

नमो नमस्ते गायत्रि! सावित्रि! त्वां नमाम्यहम्।
सरस्वति! नमस्तुभ्यं, तुरीये! ब्रह्मरूपिणि!॥

इसका अर्थ स्पष्ट है। गणेशकी स्तुति—

जयति गणेशो देवो हर्ता विघ्नस्य सकलभक्तानाम्।
अनुरक्तानां लोके सिद्धिप्रद एष विख्यातः॥

जो सकल-भक्तोंके विघ्नोंका हरण करता है, अनुरागी जनोंको लोकमें सिद्धियोंका दान देता है, ऐसा यह विख्यात-गणेशदेवकी जय हो।

महावीर-हनुमान्‌की स्तुति—

दूरीकृतसीतार्तिः, प्रकटीकृतरामवैभवस्फूर्तिः।
दारितदशमुखकीर्तिः, पुरतो मम भातु हनुमतो मूर्तिः॥

जिसने सीताके दुःखको दूर किया, रामके वैभवकी स्फूर्ति जिसने प्रकट की, एवं जिसने रावणकी वीरताकी कीर्तिका ध्वंस किया, ऐसी हनुमान्‌की मूर्ति मेरे समक्ष भासित हो।

'ॐ सोहं' की महिमा स्तुति-एवं उपदेश—

नित्यः शुद्धो ह्यखण्डो गगनमिव सदा व्यापको ब्रह्म-पूर्णः,
साक्षी सच्चित्सुखाब्धिः सकल--नरनरी--धीगुहासु प्रदीपः।

निर्वाणं यस्य बोधात्परमसुखमयं लभ्यते प्रार्थिभिः स्वम्,
ॐ सोहं ध्यायतां तं परममृतमजं चेतसा निर्मलेन ॥
भज ॐ सोहं, त्यज रे ! भ्रान्तिं, निश्चिनु सोहं निजरूपम् ।
नित्यः शुद्धो बुद्धः सच्चित्सुखरूपस्त्वं भव सोऽहम् ॥
अजपामन्त्रं सोऽहं-ओमिति जप्त्वा देवं स्वात्मानम् ।
ज्ञात्वा सहजावस्थायां वस द्वन्द्वातीतो भव सोऽहम् ॥

'ॐ सोहं' नित्य है, शुद्ध है, अखण्ड है, आकाशके समान सदा व्यापक है, पूर्ण-ब्रह्मस्वरूप है, साक्षी है, सत् चित् एवं सुखका महासागर है, सकल नर-नारियोंकी बुद्धिरूप-गुहामें प्रदीपके समान स्वयं प्रकाशमान है। प्रार्थीजन-जिसके बोधसे परमसुखमय-स्वभूत-निर्वाणरूप मोक्ष का लाभ प्राप्त करते हैं। उस परम, अमृत-अजरूप ॐ सोहंका निर्मल चित्त द्वारा ध्यान करो। 'अरे ! तू 'ॐ सोहंका भजन किया कर, अविद्या की मिथ्या-भ्रान्तिको त्याग कर, 'ॐ सोहं' मेरा ही स्वरूप है, ऐसा निश्चय कर। 'ॐ सोहं' नित्य-शुद्ध-बुद्ध सच्चित्सुखरूप है, वही तू है, वही तू हो, 'ॐ सोहं' यह अजपामन्त्र है, उसका जप करके, और उस के द्वारा अपने आत्मदेवको जान करके सहजावस्थारूप-निर्विकल्प-समाधिमें सदा निवास कर, और द्वन्द्वातीत-सोहंरूप ही तू हो।

पश्चात् जिसके कृपामय-शुभादेशसे यह सब पुण्यमय धर्म-कार्य निर्विघ्न-सानन्द संपन्न हुआ, उस भगवती श्रीनर्मदा-मैयाकी इसप्रकार स्तुति एवं वन्दना की गई—

रेवां पद्मपलाशदीर्घनयनां गौरीं सुशोणाधरां,
नासा—हीरकचारुहाससुमुखीं कौशेयरक्ताम्बराम् ।
तन्त्रीमङ्कगतां करेण शनकै—-रुन्नादयन्तीं मुहुः,
वन्दे मेकलकन्यकां शिवमयीं* सर्वाङ्गभूषावृताम् ॥

---

*'नर्मदाके कंकर-पत्थर सभी शिव-शंकर' यह प्रामाणिक-लोकोक्ति

जिसके कमलपत्रके समान दीर्घ–सुन्दर नयन हैं, जिसका प्रशस्त गौर–वर्ण है, जिसके शोभन-अधर (ओष्ठ) लाल–वर्णके हैं, जिसकी उन्नत-नासिकामें बढिया हीरा चमक रहा है, जिसका दिव्य-मुख, सरस-मन्द हास्यसे युक्त है, जिसने रेशमीलाल-वस्त्र धारण किये हैं, जो अपनी गोदमें वीणा रखकर उसे हाथसे धीरे-धीरे बार-बार बजा रही है, जिसके हस्तादि समस्त- अंग-उपांग, विविध आभूषणोंसे समलंकृत हैं, ऐसी मेकल-नामक पर्वत-श्रेष्ठकी कन्या शिवमयी-कल्याणमयी-रेवा-नर्मदा भगवतीकी मैं वन्दना करता हूँ ।

अन्तमें इस मंदिर--निर्माणमें एवं पावन–महोत्सवमें जिन-जिन उदार-धर्मनिष्ठ–भक्तजनोंने सहायता की, और यहां आकर उत्सवकी शोभा बढाई, उन सबको सभामें महात्माओंकी तरफसे सप्रेम धन्यवाद एवं शुभाशीर्वाद दिया गया, और हर नर्मदे ! नमः पार्वतीपतये, बद्रिनारायण भगवान्‌की जय, 'माई रेवाके हम बालक हैं, मैया दूध पीलावत है । रेवातटपर धूम-धडाका, हरिभजनका यही तडाका ।' की भव्य-गर्जनाके साथ महोत्सव समाप्त कर दिया गया ।

## भागवत एवं रामायणमें दृष्टिसृष्टिवाद ।

एक महात्माने प्रश्न किया—भगवन् ! गुरुमहाराज ! वेदान्तमें दृष्टि—सृष्टिवाद प्रसिद्ध है, वेदान्तके गौडपादादि-आचार्योंने–'मनोदृश्यमिदं द्वैत' इत्यादि वचनोंके द्वारा उसका स्पष्ट वर्णन किया है-परन्तु श्रीमद्भागवतमें एवं तुलसीकृत–रामायणमें भी क्या दृष्टि–सृष्टि-वादका वर्णन है ? आपश्री भागवतका वेदान्तके साररूपसे एवं वेदान्तके चतुर्थ-प्रस्थानरूपसे वर्णन करते हैं, तो उसमें भी उसका वर्णन होना चाहिये, तो कृपाकरके श्रीमद्भागवतमें तथा रामायणमें प्रामाणिक

---

भी श्रीनर्मदाको शिवमयी सिद्ध करती है, अतएव भारतके प्रायः सभी शिव मन्दिरोंमें नर्मदाके ही पाषाणोंका बाणलिंग स्थापित किया जाता है, यह नर्मदाके शिवमयीत्वमें प्रत्यक्ष भी प्रमाण है ।

दृष्टि-सृष्टिवादका वर्णन दीखानेकी कृपा करें।

प्रसन्नताके साथ मैंने कहा-प्रिय! महात्मन्! श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धमें इस श्लोक द्वारा स्पष्टतः दृष्टि-सृष्टिवादका वर्णन है—वह श्लोक यह है—

'मल्लानामशनि-र्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्,
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपते—-विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां,
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः।

(श्रीमद्भा०१०।४३।१७)

जिससमय भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ रंगभूमिमें पधारे, उससमय वे अपनी अपनी विभिन्न-दृष्टिके अनुसार पहलवानोंको वज्रकठोर-शरीररूपसे, साधारण-मनुष्योंको श्रेष्ठनररूपसे, स्त्रियोंको सुन्दरतम-प्रियतम मूर्तिमान् कामदेवरूपसे, गोपोंको स्वजनरूपसे, दुष्ट—राजाओंको दण्डदेनेवाले—शासकरूपसे, माता-पिताके समान बड़े-बूढ़ोंको शिशुरूपसे, कंसको मृत्युरूपसे, तत्त्वज्ञानवर्जित-उपासकोंको विराट्रूपसे, ज्ञानयोगियोंको परमतत्त्वसच्चिदानन्दरूपसे और भक्त-शिरोमणि-वृष्णिवंशियोंको अपने परमाराध्य-इष्टदेवरूपसे विदित हुए। इन सबने अपने अपने हृदयोंके भावोंके अनुरूप एक ही भगवान्में एकही समय क्रमशः रौद्र, अद्भुत, शृङ्गार, हास्य, वीर, वात्सल्य, भयानक, बीभत्स, शान्त और प्रेमभक्ति-रसका अनुभव किया। 'जाकि रही भावना जैसी प्रभुमूरत तिन देखी तैसी।' विविध-संस्कारादि रूपकारणसे होनेवाली चित्तकी विविध-वृत्तियाँ ही दृष्टि एवं भावना नामसे व्यवहृत होती हैं।

आइये, अब देखिये, तुलसी-रामायणके लंकाकाण्डको, इसमें भी विलक्षण-ढंगसे ऐसा दृष्टि-सृष्टि वाद उपलब्ध है-जैसे—

जिससमय श्रीरघुवीर लंकाके सुबेल पर्वतपर वानर-सेनाके साथ

ठहरे हैं, श्रीलक्ष्मणजीने कोमल-पत्र-पुष्पादिको बिछाकर सुन्दर-शय्या बनाकर उसपर मृदुल-मृगछाला बिछा दी है। और उसी आसनपर वानरराज-सुग्रीवकी गोदमें अपना शिर रखकर श्रीरामजी विराजमान हुए हैं। विभीषणजी कानोंसे लगकर सलाह कर रहे हैं, अंगद और हनुमान् प्रभुके चरणकमलोंको दबा रहे हैं, लक्ष्मणजी धनुप-बाण लिये बीरासनसे प्रभुके पीछे बैठे हैं। पूर्वदिशाकी ओर देखकर प्रभु श्रीरामने चन्द्रमा उदित हुआ देखा। उस समय—

'कह प्रभु शशि महँ मेचकताई। कहहु काह निज निज मति भाई।

प्रभुने कहा—भाइयो! चन्द्रमामें जो कालापन है, वह क्या है? अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार कहो।

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। शशि महँ प्रगट भूमि कै छांई।
मारेउ राहु शशिहि कह कोई। उर महँ परी श्यामता सोई।
कोउ कह जब विधि रति-मुख कीन्हा। सारभाग शशिकर हरि लीन्हा।
छिद्र सो प्रगट इन्दु उर मांहीं। तेहि मग देखिय नभ परिछांहीं।
प्रभु कह गरल बन्धु शशि केरा। अति-प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा।
विष संयुत कर निकर पसारी। जारत विरहवन्त नर-नारी।

कह हनुमन्त सुनहुँ प्रभु, शशि तुम्हार प्रिय--दास।
तव मुरति विधु उर बसति, सोई श्यामता भास॥

सुग्रीवने कहा—हे रघुनाथ जी! सुनिये, चन्द्रमामें पृथ्वीकी छाया दिखाई दे रही है, किसीने अर्थात् विभीषणने कहा—चन्द्रको राहुने मारा था, वही चोटका काला दाग हृदय पर पड़ा हुआ है। कोई अर्थात् अंगद कहता है—जब ब्रह्माने कामदेवकी स्त्री-रतिका मुख बनाया, तब उसने चन्द्रमाका सार-भाग निकाल लिया, जिससे रतिका मुख तो परम सुन्दर बन गया, परन्तु चन्द्रमाके हृदयमें छेद हो गया, जिसकी राहसे आकाशकी काली छाया उसमें दिखाई पड़ती है। प्रभु श्रीरामने

कहा-विषचन्द्रमाका बहुत प्यारा भाई है, इसीसे उसने विषको अपने हृदयमें स्थान दे रक्खा है। अतः विषयुक्त अपने किरण-समूहको फैलाकर वह वियोगी नर-नारियोंको जलाता रहता है। हनुमानजीने कहा—हे प्रभो! सुनिये, चन्द्रमा आपका प्रिय दास-भक्त है। आपकी सुन्दर श्याम-मूर्ति उसके हृदयमें बसती है, वही श्यामताकी झलक चन्द्रमामें दीखती है। (१) सुग्रीव भूपति राजा बना है, राजाको स्वभावतः भूमिवृद्धिकी अभिलाषा बनी रहती है, अतः उसकी भूमि-भावना ही छायारूपसे चन्द्रमें दीखती है। (२) विभीषणको रावणने लातोंसे मारा था, उनकी चोटोंके काले-दाग पडे थे, इसलिये उसकी मारके चोटोंकी भावना ही चन्द्रमें कालिमा रूपसे अभिव्यक्त हुई। (३) अपने पिता-वालीको मार कर उसका राज्य छीन लिया गया, उसका गहरा घावरूप छेद अंगदके हृदयमें अभीतक विद्यमान है, अतः उसमें कभी कभी वैरभावकी काली छाया दीख पड़ती है, इसलिये उसे उसमें वही भाव प्रतीत होता है। (४) श्रीसीताके विरहसे व्यथित होनेके कारण चन्द्रमें श्रीरामको भी वही व्यथाके प्रयोजक-भाव दीख पड़ते हैं। (५) और दास-भक्त हनुमानके हृदयमें भगवान् श्यामसुन्दर-श्रीराम बसते हैं, वही भाव उसको चन्द्रमें भी दीखता है। ये सब-भावनारूप–दृष्टि ही सृष्टि, या दृष्टिके अनुरूप सृष्टिके उदाहरण हैं।

नमामि विश्वेश्वर! विश्वरूपं, सनातनं ब्रह्म निजात्मरूपम्।
ध्यायामि, सर्वं निजभावगम्यं शिवं वरेण्यं सुखदं भजामि॥

भवतु भवतु भूयो रामराज्यं पृथिव्यां,
भवतु भवतु भूमिः स्वर्गतुल्या स्वराज्ये।
वसतु वसतु चित्ते सुमतिः सौख्यपूर्णा,
भवतु परमशान्तिः सर्वदा सर्व लोके॥

हरिः ॐ शिवोहं शिवः सर्वम्, शिवं भूयात् सर्वेषाम्।

# कल्याणकर-सदुपदेश।

ए रे ! जीव--विहग ! न तेरा यहाँ कोई यह,
रज्जु--ममताकी छिन्न--भिन्न कर धर दे।
विचर स्वच्छन्द, मन्द ! चिदानन्द--कानन में,
देह---पींजरेसे अरे ! नेह दूर कर दे॥
जाके गेह-गेह नाता-नेह क्या बढ़ाता फिरे ?,
ले विचार, चार दिनका ही यहां मेला है।
क्लेशसे जुटाता संगियोंका क्या झमेला अरे !,
प्रभुके प्रदेश जाना पड़ता अकेला है॥
सोता है अचेत तू विषय--विष--मन्दिरमें,
पाकर विषम--परिणाम कैसे रोता है ?।
बाहर मचाता है पुकार बार बार किन्तु,
अन्तरमें तेरे तो प्रतीति न अटल है।
होना है सफलतो स्वबल--अभिमान छोड़,
करुणानिधानको सुहाता नहीं छल है।
पुण्य-नीति प्राप्त कर, वासनाएँ जीत कर,
प्रभुपद—प्रीत कर, लाज रख बानेकी।
राग—द्वेष त्याग कर, सर्व--आत्म—भाव कर,
मनका विजय कर शान्ति—सुखपानेकी॥
सबका ही हित कर, शुद्ध निज चित्त कर,
नित्त कर बात सर्वेशको रिझानेकी।
कामनासे हट कर, प्रेमभक्ति डट कर,
रामनाम रट कर युक्ति—मुक्ति पानेकी॥

*—*